विशेषांक

UPBIL 04831

मूल्य
₹ 100

संस्कृति पर्व

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

sanskriti parva

मुग़ल मिथक और हिन्दवी स्वराज्य

विदेश के लिए मूल्य : $10

www.bharatsanskritinyas.org

हरी प्रसाद गोपी कृष्ण सराफ प्रा. लि. वेन्चर

गोरखपुर: गोपी गली, हिन्दी बाज़ार । ऐश्प्रा क्रासिंग, पार्क रोड

TOLL FREE : 1800 120 1299 • देवरिया । पडरौना । बस्ती । बलिया । आजमगढ़ । लखनऊ । मुम्बई • AISSHPRA JEWELLERY

शत् शत् नमन

Tatya Tope, Shortly before his execution on April 18, 1859

Andrew Ward, Our Bones are Scattered, The Cawnpore Massacres and the Indian Mutiny 1857, (New York, 1996) p, 534

तात्या टोपे (16 फरवरी 1814 - 18 अप्रैल 1859)

चित्र सौजन्य : प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी

भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के एक प्रमुख सेनानायक थे। सन 1857 के महान विद्रोह में उनकी भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रेरणादायक और बेजोड़ थी।सन् सत्तावन के विद्रोह की शुरुआत 10 मई को मेरठ से हुई थी। जल्दी ही क्रांति की चिन्गारी समूचे उत्तर भारत में फैल गयी। विदेशी सत्ता का खूनी पंजा मोडने के लिए भारतीय जनता ने जबरदस्त संघर्ष किया। उसने अपने खून से त्याग और बलिदान की अमर गाथा लिखी। उस रक्तरंजित और गौरवशाली इतिहास के मंच से झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा, राव साहब, बहादुरशाह जफर आदि के विदा हो जाने के बाद करीब एक साल बाद तक तात्या विद्रोहियों की कमान संभाले रहे।

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	संता जी घोरपडे के प्रेरक प्रसंग	अनीश गोखले	14
02	A Myth - In Need of Serious Corrections	Prof. Himanshu Chaturvedi	17
03	A less known yet glorious chapter of Indian History	Dr. Rajeev Tiwari	21
04	हिन्दवी स्वराज्य	प्रो० राकेश उपाध्याय	29
05	हम किधर जा रहे हैं	विक्रमादित्य सिंह	58
06	पाकिस्तान का मतलब क्या, एतिहासिक विश्लेषण	अंबरीष फडणवीस	62
07	भाषिक आतंकवाद, मध्ययुगीन अन्तरस्सूत्र	कमलेश कमल	68
08	मुगल मराठा संघर्ष	डॉ0 अर्चना पाठ्या	71
09	वीरांगना ताराबाई	नीता चैबीसा	75
10	मराठा भारत	कैप्टन सुभाष ओझा	78
11	काव्य फलक	शशि पाण्डेय, अनिता अग्रवाल, डॉ0 संध्या राठौर	82

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है। – सम्पादक

संरक्षक मंडल

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी
(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)
जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (अयोध्या)
प्रो० राकेश उपाध्याय
(अध्यक्ष, भारत अध्ययन केन्द्र का० हि० वि० वि०,वाराणसी)
डॉ० लालता प्रसाद मिश्र
(वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)

विद्वत परिषद

प्रो० सभाजीत मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
प्रो० विनय कुमार पाण्डेय
(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का० हि० वि० वि०, वाराणसी)
प्रो० रामदेव शुक्ल
(पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय
(अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त
(कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
श्री मनोजकांत
(राष्ट्रवादी चिंतक)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी
(निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे
(कुलपति, सिद्धार्थ वि०वि०, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद
(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय, गया, बिहार)
श्री प्रफुल्ल केतकर
(सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय
(सम्पादक, हिन्दुस्तान, बिहार/झारखंड)
प्रो० चितरंजन मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०, गोरखपुर)
प्रो० जीतेन्द्र मिश्र
(अधिष्ठाता, विधि संकाय, दी०द०उ० गो०वि०वि०)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी
(पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह
(पूर्व प्रतिकुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)
डॉ० मृणालिनी चतुर्वेदी
(अध्यक्ष, क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
डॉ० नरेश अग्रवाल
(वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव
(अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०)
राकेश त्रिपाठी
(आई० आर० एस०)
डॉ० योगेश मिश्र
(समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह,(नई दिल्ली)
विशिष्ट सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)

सदस्य
श्री अजय उपाध्याय
(वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
डॉ० संजय द्विवेदी
(निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी
(बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
डॉ० ममता त्रिपाठी
(दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन
(एडवोकेट, इलाहाबाद)
श्री मितेश कुमार चंदू भाई पटेल
(श्रीहरि कंस्ट्रक्शन,अहमदाबाद, गुजरात)
श्री दीपक कुमार घनश्याम भाई गज्जर
(श्रीहरि कंस्ट्रक्शन,अहमदाबाद, गुजरात)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी
(वाराणसी)
श्री हेमंत मिश्र
(निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही
(निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर०सी० मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी
(वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
डॉ० रविकांत तिवारी
(अमेरिका)
डॉ० राम शर्मा
(शिक्षाविद्, मेरठ)

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

अतिथि सम्पादक
प्रो० राकेश कुमार उपाध्याय

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

सहायक-सम्पादक (हिन्दी)
डॉ० अनिता अग्रवाल

सहायक-सम्पादक (अंग्रेजी)
डॉ० राजीव तिवारी

सह-सम्पादक
डॉ० प्रदीप राव
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल
डॉ० अर्चना पाठ्या
दिवाकर शर्मा
आमोदकांत मिश्र

समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह

सम्पादकीय सलाहकार
मनोज कुमार त्रिपाठी
कैप्टन सुभाष ओझा

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
श्री असित के0 चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)
श्री अशोक नारायण धर दूबे
(वरिष्ठ अधिवक्ता, गोरखपुर)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87
अमेरिका कार्यालय : 17413 Blackhawk St। Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)
Mail us - editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

H.H. Pujya Swami Chidanand Saraswatiji
President, Parmarth Niketan

आशीर्वाद

विश्व इस समय एक भीषण त्रासदी के दौर में है। सभ्यता के नाम पर असभ्यताओं ने दुनिया को बहुत हानि पहुँचायी है। आधुनिक विज्ञान और कथित प्रगति की गति ने आज मनुष्य को ही संकट में डाल दिया है। सृष्टि में सनातन जीवन संस्कृति के आधार पर विकसित होने वाली मनुष्यता कहीं बहुत पीछे छूट गयी है। ऐसे में जगत को फिर भारत वर्ष की याद आयी है। सनातन परंपरा की याद आयी है। आज सभी की दृष्टि भारत पर टिकी है। इसी धरती से मनुष्यता को नवजीवन की उम्मीद है।

मुझे यह जान कर अतीव प्रसन्नता हो रही है कि भारत की महान संस्कृति और इतिहास की पुर्नस्थापना के लिए भारत संस्कृति न्यास और उसकी मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व ने संकल्प के साथ एक सकारात्मक प्रयास शुरू किया है। एक बहुत ही पुनीत कार्य है। संस्कृति पर्व का नवीनतम अंक भारत के इतिहास के एक ऐसे कालखंड को रेखांकित करने वाला है जिसकी सुधि भावी पीढ़ी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह परिकल्पना ही रोमांचित करने वाली है। पराधीन भारत मे वह कालखंड जिसमे महान मराठा संघर्ष के माध्यम से सनातन संस्कृति की स्थापना और संरक्षा की गाथा उल्लिखित है, इसे प्रत्येक भारतवासी के साथ ही विश्व को भी जानना चाहिए।

संस्कृति पर्व का यह अंक निश्चय ही भारत के इतिहास के उस स्वर्णिम अध्याय को रेखांकित करने वाला होगा जिसकी जानकारी बहुत आवश्यक है। संस्कृति पर्व के संपादक श्री संजय तिवारी जी और पूरी संपादकीय टीम को इस संकल्प के लिए मैं बधाई एवं माँ गंगा का आशीर्वाद। यह प्रभु कृपा है कि मैं भी इस पुनीत संकल्प का साक्षी भी बन रहा हूँ और सहभागी भी। संस्कृति पर्व परिवार को हृदय से आशीर्वाद।

ईश्वर और मानवता की सेवा में

स्वामी चिदानन्द

स्वामी चिदानंद सरस्वती
परमाध्यक्ष, परमार्थ निकेतन,
ऋषिकेश

Prmarth Niketan Ashram, PO Swargashram, Rishikesh (Himalayas), Uttarakhand-249304 India Phone: +91-135-2440088, +91-135-2440070 , Fax: +91-135-2440066 .
swamiji@Parmarth.com, www.PujyaSwamiji.org, PujyaSwamiji , Twitter/@ PujyaSwamiji
@ Parmarth.org, Facebook/ParmarthNiketan, @ ParmarthNiketan ,Youtube/ParmarthNiketan

भारत की संस्कृति और इतिहास अद्भुतं है। इन विषयों पर बहुत कुछ लिखा और प्रकाशित किया जा चुका है लेकिन बहुत कुछ ऐसा भी है जिसके बारे में सामान्य जन को कुछ ज्ञात नही है। संस्कृति पर्व अपने प्रत्येक अंक में ऐसे विषय लेकर प्रस्तुत होती है। इस बार भारत के इतिहास के एक ऐसे स्वर्णिम अध्याय के साथ यह अंक आयोजित किया गया है जिसको पढ़ने के बाद निश्चित रूप से हर भारतीय को गर्व होगा। भारत के लिखित इतिहास में बहुत कुछ या तो छूट गया है , या उस समय के लेखकों और इतिहासकारो ने जानबूझ कर उसे छोड़ दिया है। खास तौर पर मध्यकालीन भारत । इस विषय को लेकर संस्कृति पर्व की सम्पादकीय टीम ने यह विशेष अंक आयोजित किया है। इस अंक के आयोजन में भारत अध्ययन केंद्र , काशी हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य राकेश उपाध्याय जी का जो अप्रतिम योगदान रहा है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

संस्कृति पर्व का यह अंक वास्तव में अतिविशिष्ट है। इस अंक की सामग्री भारतीय इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसको पाकर हमारे पाठको की बहुत सी जिज्ञासाएं शांत भी होंगी और सभी को अपनी विरासत पर गर्व भी होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस अतिविषष्ट आयोजन के लिए संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद को हृदय से बधाई देता हूँ। भारत के इतिहास के ये अनछुए पन्ने नई पीढ़ी को अपने मूल से जोड़ने में अवश्य सफल होंगे। हमारे सुधी पाठको के लिए यह अंक अत्यंत रोचक और महत्वपूर्ण होगा। इन्ही शब्दो के साथ सभी के प्रति आभार।

आपकी प्रतिक्रियाएं हमे संबल देंगी।

बी के मिश्रा

सम्पादकीय

जिसे साक्षी होना था

संजय तिवारी

नही हो सका, जिसे साक्षी होना था। नायक और प्रतिनायको के स्वर्णिम पन्ने अंधेरे में छोड़ दिये गए। काली स्याही को भारत का इतिहास बता कर पाठ्यक्रम भर दिए गए। पीढ़ी दर पीढ़ी स्याही पढ़ते चली आ रही। कोई कोशिश नही हुई कि स्वर्णाक्षर कहां खो गए। स्वर्णिम अतीत । भारत का शौर्य। भारत की भारतीय तासीर। भारतीय गौरव के प्रतीक। भारत के महान नायक, योद्धा और प्रतिनायक। सभी पर खलनायको को मढ़ दिया गया। बता दिया गया कि यही था हमारा अतीत। यही थी हमारी पहचान। यही थी विरासत। कदम कदम पर लिखी गईं झूठी, बेबुनियाद कहानियों को भारत का इतिहास बना कर पीढ़ियों को पढ़ाया जाता रहा। सब चुपचाप पढ़ते, बढ़ते रहे। कोई प्रतिवाद नही। कोई तलाश नही। कोई अनुसंधान नही। कोई जिम्मेदारी नही। जो कुछ चारणो ने लिख कर प्रकाशित कर दिया, सरकारी तंत्र ने उसे पाठ्यक्रमो का हिस्सा बना दिया और बांट दी गयी डिग्रियां, बांट दिए गए सम्मान और पुरस्कार।

अद्भुत खेल खेला गया है हमारे इतिहास के साथ। इतने झूठ पढ़ाये गए कि सच कही बहुत दूर कोने में सिसकता रहा। यहां तक कि इतिहास के घटनाचक्र के प्रामाणिक स्थलों पर स्थापित विश्वविद्यालयों के स्थापित विद्वानों को यह भी समझ नही आया कि वे कम से कम अपने आसपास के उन प्रमाणों पर ही नए शोध कर सच उजागर करने की कभी कोशिश कर लेते। थोड़ा लोक का आश्रय लेते, थोड़ी हकीकत जान लेते और बहुत पीछे का नही तो कम से कम दो तीन सौ सालों के पीछे के घटनाक्रम को ही समझ पाने की कोशिश करते। यदि ऐसा किया गया होता तो भारत की स्वाधीनता के बाद की पीढ़ी अपने वास्तविक अतीत और वास्तविक नायकों से परिचित हो पाती।

भारत की नई पीढ़ी को जलते स्वीडन को समझने में कोई दिक्कत नही होती। नोआखाली 1946 से दिल्ली 2020 तक को हमारी नई पीढ़ी आसानी से समझ पाती। भारत के मध्ययुगीन इतिहास में ऐस अनेक पृष्ठ हैं जिनको लिखना, पढ़ना और अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य शेष है। यह कार्य यदि पहले हो गया होता तो आज उपस्थित अनगिन समस्याओं और विषयों को समझने में आसानी होती। हम सहजता से समझ पाते कि म्यामार से लेकर श्रीलंका तक, दिल्ली से लेकर बगलुरू तक और जलते हुए स्वीडेन का वास्तविक नेरेटिव क्या है? इतिहास साक्षी होता यह बताने के लिए कि यह सदियों से चल रहा है और आगे भी वैसे ही चलात रहेगा यदि सभ्यता ने इतिहास से सीख न ली। भारत के लिए यह नेरेटिव ऐसी चुनौती है जिसे अभी तो झेलना ही है अगले दशकों में और गंभीरता से इसका सामना करना है। अभी तो स्वाधीन भारत के 100 वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। 1945-46 और 47 के भारत को भी ठीक से लिखा गया होता तो वर्तमान भारत उन पन्नों से कुछ सीख पाता। कल्पना करके कंपकंपी सी होने लगती है कि ऐसी ही परिस्थितियां बनी रहीं और यही नेरेटिव चलता रहा तो 2047 का भारत कैसा होगा?आखिर किस बूते पर कोई कहे कि इतिहास साक्षी है। हर प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए इतिहास साक्षी है का जुमला क्यो फेंका जाना चाहिए जबकि जिसे साक्षी होना था वह इतिहास लिखा ही नही गया। जिसे साक्षी होना था , वह तथ्य

उजागर ही नही किया गया। जिसे साक्षी होना था , उस घटना चक्र को वर्णित ही नही किया गया। हमे तो विगत 70 वर्षों में अपनी पराधीनता के प्रतीकों के साथ ही रहना सिखाया जा रहा है। आक्रांताओं के प्रतीकों को ही भारत का इतिहास बताकर यह साबित करने की कोशिश की जा रही है कि ये ही हमारे अतीत के नायक है, जबकि वे सभी केवल और केवल खलनायक से ज्यादा कुछ भी नही है। ऐसे में आखिर किस इतिहास को बार बार साक्षी होने का दम भरा जाता है। वास्तव में जिसको साक्षी होना था उसको तो इतने सालों में कही चर्चा में भी नही आने दिया गया। एक ऐसे महत्वहीन, निरंकुश, आततायी, आचरणहीन, उपद्रवी, राष्ट्रद्रोही, लुटेरे कालखंड को इतिहास में भारत का मध्यकाल बता कर स्थापना दे दी गयी जिसका भारत और भारतीयता से कोई संबंध ही नही रहा। उसी कालखंड के महान और राष्ट्रभक्त संवेदनशील योद्धाओ की गाथाओं को कही दर्ज तक नही होने दिया गया। भारत जब हिमालय से दक्कन तक, कांधार से कान्यकुमारी तक, एक सशक्त हिंदवी स्वराज्य के रूप में स्थापित था तब उसी कालखंड को कथित सरकारी इतिहासकारो ने एक मिथक से आच्छादित कर मुगल इतिहास बना दिया। भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदवी स्वराज्य और हिन्दू पद पादशाही की विराट संरचना और महान गाथा पर चुप्पी साध ली गयी।

स्वाधीनता के बाद के इतिहासकारो को भी यह गरज नही लगी कि वे उस गलती को सुधार कर अपनी नई पीढ़ी के सामने वास्तविकता को रख पाते। पीढ़ी दर पीढ़ी वही झूठ पाठ्यक्रमो में पढ़ाया जा रहा और हम ताशबीन बने देखे जा रहे है।

संस्कृति पर्व के इस अंक के आयोजन को एक गिलहरी प्रयास इस रूप में कहा जा सकता है कि इस माध्यम से मध्यकालीन भारत के कुछ ऐसे पन्नो को हम पाठकों तक पहुचाने की कोशिश कर रहे हैं जिन पर स्थापित इतिहासकारो ने कभी दृष्टि डालने की कोशिश ही नही की। इस आयोजन में भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय , वाराणसी के अध्यक्ष आचार्य राकेश उपाध्याय जी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ कि उनकी प्रेरणा और उनके मार्गदर्शन में यह पुनीत कार्य हो पा रहा है। संस्कृति पर्व परिवार के लिए यह अत्यंत गर्व का विषय है कि आचार्य राकेश उपाध्याय जी ने स्वयं इस अंक के लिए संपादकीय आतिथ्य स्वीकार कर अतिथि संपादक के रूप में अपना अमूल्य समय दिया है। इस अंक के दो ऐसे लेखकों का मैं अवश्य उल्लेख करना चाहूंगा जिनके सहयोग ने इस आयोजन को और भी गति दे दी। श्री अंबरीष फडणवीस और श्री अनीश गोखले ने अत्यंत अल्प समय मे इस अंक के लिए सामग्री उपलब्ध कराई। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी के वंशज श्री कुणाल तिलक जी ने इस अंक से ही हमारी सलाहकार परिषद के विशिष्ट सदस्य के रूप में जुड़ कर हमे उत्साहित किया है।

मुझे विश्वास है कि संस्कृति पर्व का यह अंक पाठकों को पसंद भी आएगा और उन्हें चिंतन के लिए प्रेरित भी करेगा।

“भारत की नई पीढ़ी को जलते स्वीडन को समझने में कोई दिक्कत नही होती। नोआखाली 1946 से दिल्ली 2020 तक को हमारी नई पीढ़ी आसानी से समझ पाती। भारत के मध्ययुगीन इतिहास में ऐस अनेक पृष्ठ हैं जिनको लिखना, पढ़ना और अगली पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य शेष है। यह कार्य यदि पहले हो गया होता तो आज उपस्थित अनगिन समस्याओं और विषयों को समझने में आसानी होती। हम सहजता से समझ पाते कि म्यामार से लेकर श्रीलंका तक, दिल्ली से लेकर बगलुरू तक और जलते हुए स्वीडन का वास्तविक नेरेटिव क्या है?”

भारत के अनुकूल इतिहास के अध्ययन से ही नये युग का सूत्रपात संभव

प्रो0राकेश कुमार उपाध्याय

एक ओर जहां बहादुर शाह जफर जैसे हिन्दू-मुस्लिम समन्वयवादी राजनीतिक परंपरा का उदय होता है तो उसी के साथ एक रक्त और एक पुरखों की भूमि भारत को हमवतन मानने वाले मुस्लिमों को साथ लेकर भारत के राजनीतिक आकाश में समन्वयवादी राजनीति का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ महादजी शिंदे(सिंधिया) जैसे महानायक का जीवन चरित्र भी सूर्य की तरह देदीप्यमान होकर उगता दिखाई पड़ता है।

शताब्दी पीठ आचार्य, भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

'इस्लामोफोबिया' शब्द को लेकर बहसअक्सर चल निकलती है। आज के समय में जबकि राजनीतिक, कूटनीतिक चालों के जरिए अपने गुटीय, सामुदायिक अथवा पांथिक उद्देश्यों की पूर्ति के प्रयत्न किए जाते हैं तो एक दूसरे पर शाब्दिक घात और प्रतिघात के लिए नए नवेले शब्दों के इस्तेमाल का जो चलन चल निकला है, उसी प्रक्रिया में यह 'इस्लामोफोबिया' शब्द विश्व भर में फैला है। सीधे सादे अर्थ में बात करें तो साधारण मुसलमान के प्रति एक संदेह निर्मित करना, उसके प्रति नफरत, घृणा या भेदभाव का वातावरण निर्मित करने का मुद्दा इस्लामोफोबिया के नारे के जरिए बहस के बीच लाया जाता है। इस बहस को जन्म देने वाले, बहस को बढ़ाने वाले हालांकि साधारण मुसलमान नहीं होते हैं। अक्सर इसके पीछे वो राजनीतिक समूह होते हैं, जो खुद को सेक्युलर विचारधारा की पंगत में रखते हैं और जिन्हें इस्लामोफोबिया की बहस पैदाकर उसके जरिए कोई सियासी लामबंदी करनी होती है।

कम-अधिक संपूर्ण विश्व में, विशेष रूप से यूरोप और अमेरिका से होते हुए यह 'फोबिया' हमारे देश भारत में भी बहस का मुद्दा बनाया जाता है और इसके लिए हिन्दू पांथिक संगठनों को सवालों के घेरे में खड़ा कर दिया जाता है कि वह मुस्लिम समुदाय के विरुद्ध नफरत फैलाते हैं, विषवमन करते हैं। ऐसा आरोप करने वाले राजनीतिक इस्लामी विचारों से जुड़े समूहों को किसी भी प्रकार से दोष देने से इन्कार भी करते हैं जिनके किसी ना किसी कृत्य के कारण, या जिनकी किसी ना किसी भड़काऊ क्रिया पर प्रतिक्रिया यदि होने लगती है तो फिर उस प्रतिक्रिया की जड़ में इस्लामोफोबिया को लाकर खड़ा करने का प्रयत्न होता दिखाई पड़ता है। प्रश्न है कि यह कितना उचित या अनुचित है? क्या इस्लामोफोबिया की बीमारी का अक्स उस नारे में दिखाई नहीं पड़ता जो राजनीतिक इस्लामवादियों द्वारा 'इस्लाम खतरे में है' के नारे के साथ हर उस वक्त लगाया जाता है कि जबकि कुछ विशेष लोगों या किसी सांप्रदायिक गुट का राजनीतिक अस्तित्व दांव पर लगा दिखाई पड़ता है। भारतीय इतिहास ने विगत 300 साल के इतिहास में कितनी ही बार इस 'फोबिया' को इस्लाम के भीतर से ही बगैर किसी गैर-मुस्लिम पंथ की उपस्थिति के भी उठते और भयानक रूप लेते देखा है। इस्लाम के भीतर से उठने वाली राजनीति जब-जब अपना विकराल रूप दिखाती है तो राजनीति के आसमान में इस्लामोफोबिया का प्रेत अक्सर अपने पूरे वीभत्स रूप में खड़ा दिखाई देता है और इसके मूल में अधिकतर मामलों में मुस्लिम नेताओं की हिंसक सत्ता-पिपासा और असहिष्णु रवायतें ही कारण होती हैं। इस दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का विहंगावलोकन यदि किया जाए तो स्वयमेव ही सारी स्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं। इसी दृष्टिकोण से संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक में हमने मध्यकाल की कट्टर मुस्लिमसियासत और हिन्दूपदपादशाही के तत्कालीन केंद्र अर्थात मराठा राजनीति के व्यवहार और इतिहास से जुड़े उन पहलुओं को देखने और समझने का प्रयत्न किया है जो औरंगजेब के अत्याचारों और फलस्वरूप शिवाजी महाराज के प्रत्युत्तर के पश्चात् एक नए रूप में करवट लेते दिखाई देते हैं जिसमें से एक ओर जहां बहादुर शाह जफर के रूप में हिन्दू-मुस्लिम समन्वयवादी राजनीतिक नेतृत्व का उदय होता है तो उसी के साथ एक रक्त और एक पुरखों की भूमि भारत को हमवतन मानने वाले मुस्लिमों को साथ लेकर भारत के राजनीतिक आकाश में समन्वयवादी राजनीति का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ महादजी शिंदे(सिंधिया) जैसे महानायक का जीवन चरित्र भी सूर्य की तरह देदीप्यमान होकर उगता दिखाई पड़ता है।

वस्तुतः 17वीं सदी के अंतिम कुछ दशकों में भारत में अंग्रेजों के आगमन के बाद की राजनीतिक परिस्थिति में भारत की मिट्टी में पले-बढ़े भारत भाव को दिल में बसाकर चलने

वाले मुस्लिमों को लेकर एक वैकल्पिक राजनीतिक मार्ग देने का महान रास्ता महादजी शिंदे ने साकार कर दिखाया था, किन्तु इस कार्य में तब राजनीतिक और जिहादी इस्लाम से जुड़ा हुआ एक समूह ही बाधक बनकर खड़ा हो गया। मौके का लाभ अंग्रेजों ने उठाया और स्वाधीनता प्राप्त करने के भारतीय नायकों के प्रयत्नों को उसने तार-तार कर रख दिया। इतिहास की यह एक अमिट कहानी है कि पानीपत के तीसरे युद्ध में भयानक आघात लग जाने के बावजूद हिन्द के वीर मराठों ने स्वतंत्रता की चिंगारी को बुझने न देकर उसे नए सिरे सुलगा डाला और 1761 की पानीपत की हार का बदला कुछ ही वर्षों में अपने राजनीतिक कौशल से चुकाकर भारत की राजनीति में एकता के महान युग की नींव भी डाल दी। किन्तु तब जो कारगुजारी इस्लाम की राजनीति के भीतर घटित हुई, उसका परिणाम ये निकला कि दिल्ली के भाग्य से स्वाधीनता का सूर्य करीब डेढ़ सौ साल दूर चला गया। लम्हों की खता सदियों ने भुगती। और जो सबसे बड़ा घाव लगा कि भारत की स्वतंत्रता भी छिन्न-भिन्न हो गई, एकता और समन्वय के सारे धागे बिखर गए। भारत को एक अखंड राष्ट्र के रूप में गांधार से कोहिमा, तिब्बत से तुरबत, तक्षशिला से अंडमान और कश्मीर से कन्याकुमारी तक पुनः संगठित करने का स्वप्न मटियामेट हो गया क्योंकि विगत डेढ़ शताब्दियों में इस्लाम के भीतर से पैदा होने वाली काल्पनिक फोबिया-सियासत का इलाज खोज पाने में भारतीय राजनीति नाकाम हो गई।

आज की राजनीतिक परिस्थिति में राजनीति विज्ञान के अध्येताओं के सामने इस फोबिया का इलाज खोजना किसी चुनौती से कम नहीं। आखिर इस फोबिया का अंतिम समाधान कब और किस रूप में साकार हो सकेगा, यह प्रश्न हर किसी के सामने यक्ष प्रश्न के रूप में खड़ा है जिसमें से प्रश्नों और आशंकाओं की अंतहीन श्रृंखला पैदा होती दिख रही है। भारतीय राजनीति इन आशंकाओं को कुछ ताजी घटनाओं में स्पष्ट रूप से देख और समझ सकती है कि आखिर 2047 के भारत का भावी स्वरूप क्या होने वाला है? उदाहरण स्वरूप, पहले मामले में भारत सरकार ने जम्मू-कश्मीर से संविधान के अस्थायी अनुच्छेद 370 को समाप्त किया तो अनेक राजनीतिक दल जिनमें कश्मीर घाटी से अल्पसंख्यक हिन्दुओं के सफाए के जिम्मेदार लोग भी सम्मिलित हैं, ये सभी लोग कसम उठा रहे हैं कि वह फिर से विशेष दर्जा प्राप्त करने के लिए 'राजनीतिक संघर्ष' का रास्ता अपनाएंगे। कश्मीर में राजनीतिक संघर्ष के अतीत के लहुलूहान रंग को देखकर समझा जा सकता है कि भविष्य के संघर्ष का रास्ता किस प्रकार का होगा?

दूसरी बात यह है कि सर्वोच्च अदालत ने अयोध्या विवाद का अंतिम समाधान देते हुए आजादी के बाद से ही लगातार चले आ रहे अदालती विवाद को समाप्त कर विवादित भूमि को रामजन्म स्थान घोषित कर दिया तो अनेक इस्लामी समूह और गणमान्य 'शायर-विचारक' लोग इस फैसले को मानने की बजाए अदालत के लिए और शासन के लिए अपशब्दों का इस्तेमाल करते फिर रहे हैं, खुलेआम धमकियां दी जा रही हैं और ललकारने की हद तक नारे उछाले जा रहे हैं। यहां तक कहा जा रहा है कि यह समय भी बीत जाएगा और समय आएगा कि फिर से कब्जा कर लेंगे, फैसला देने वाली सर्वोच्च न्यायपीठ तक के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वह संवैधानिक भारत के भविष्य के लिए स्वस्थ संकेत नहीं है। किस मकसद की पूर्ति के लिए यह सब किया और कराया जा रहा है, तो अन्य दूसरी अनेक घटनाएं उसका संकेत दे रही हैं कि फिर से भारत में समुदाय विशेष को उस मानसिकता की ओर ढकेलने का प्रयत्न हो रहा है जिसमें फोबिया-राजनीति जन्म लेती है।

तीसरा बिन्दु सीएए को लेकर है। भारत सरकार ने भारत के पड़ोसी देशों में उत्पीड़न और जबरन मतांतरण के शिकार हो रहे अल्पसंख्यकों को नागरिकता देने का कानून संसद में पारित किया तो उसके विरुद्ध इस्लामी राजनीतिक जगत ने पूरे देश में जुनूनी हद तक ऐसा उन्मादी तूफान पैदा किया कि देश की राजधानी दिल्ली दंगों की आग में दहल उठी। इसमें सबसे बड़ी बात ये है कि सड़कों पर धरना देने वाले, दंगे के लिए नियोजित तरीके से तैयारी करने, घरों की छतों पर अवैध हथियारों, पत्थरों की जमावट करने वाले समूह उल्टा चोर कोतवाल को डांटे की तर्ज पर हिन्दू समूहों पर ही दंगे का ठीकरा फोड़ने की बौद्धिक बेईमानी भी उसी अंदाज में करते दिखाई दिए जैसे कि जिन्ना ने विभाजन की मांग न मानने की प्रतिक्रिया में होने वाले संभावित दंगों के लिए पहले ही कांग्रेस को जिम्मेदार ठहरा रखा था। तब कितनी ही झूठी बातें फैलाई गईं। 1942 में जब कांग्रेस भारत छोड़ो आंदोलन को गति दे रही थी तब जिन्ना की लीग पीरपुर रिपोर्ट को लेकर देश के मुसलमानों में यह झूठ स्थापित करने में जुटी थी कि भारत में बहुसंख्यक हिन्दुओं के कारण मुसलमानों का जीना हराम हो गया है और पाकिस्तान बनाकर ही मुसलमान अपनी समस्याओं से निजात पा सकते हैं। सवाल है कि क्या पाकिस्तान बन जाने से मुसलमानों को सभी समस्याओं से मुक्ति मिल गई? क्या पाकिस्तान में मुसलमानों को वो सारे हक-हुकूक और नागरिक सुविधाएं प्राप्त हो गईं जिनके लिए जिन्ना और उनके साथियों ने बंटवारा कराया था? और प्रश्न इस ओर भी है कि क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता का आदर्श भारत ने स्थापित कर लिया है? और अगर यह आदर्श प्राप्त नहीं हो सका है तो उसके मौलिक कारण क्या हैं? क्या इस्लामिक राजनीति हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए आवश्यक मनो-भूमिका निर्मित करने में मददगार हो हो रही है? और सबसे बड़ा प्रश्न कि क्या महात्मा गांधी जैसा आदर्श व्यक्तित्व होकर ही हिन्दू-मुस्लिम एकता का लक्ष्य हासिल किया जा सकेगा?

यह प्रश्न इसलिए हैं कि जब भी भारत में राजनीतिक नेतृत्व एकता के प्रयासों पर बल देता है तो संसार में इस्लाम के किसी कोने-कतरे से दूसरी ही आवाजें आने लगती हैं जिस पर भारतीय मुसलमान नेतृत्व भी कहीं ज्यादा ध्यान देने लगता है। इसी में से 'फोबिया' अवधारणा जन्म लेती दिखने लगती है जिसके सवालों का कोई समाधान किसी के पास नहीं होता है। क्योंकि यह 'फोबिया' स्वयं इस्लाम के भीतर उसकी स्वयं की मनःस्थिति से पैदा ज्यादा

होता दिखाई देता है न कि किसी अन्य बाह्य कारण से। गांधीजी के आदर्श नेतृत्व को लेकर जो 'राजनीतिक-इस्लामोफोबिया 'जिन्ना के मन में पैदा हुआ था, वह इसका साक्षात उदाहरण है।

आधुनिक इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम किंवा मानव एकता और अहिंसा का आदर्श स्थापित करने के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगाने वाला अगर कोई सबसे बड़ा नाम हमारे ध्यान में आता है तो वह निर्विवाद महात्मा गांधी का है। गांधी ने मन-वचन और कर्म का प्रत्येक कण लगाकर, अपने तन-मन और जीवन के प्रत्येक क्षण को लुटाकर अपना आदर्श धारण करने का प्रयत्न किया किन्तु क्या वह उस आदर्श को लक्ष्य तक पहुंचा सके? क्या वह अपने स्वप्न को साकार कर सके? निःसन्देह भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई किन्तु उस स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर असंख्य भारतीय स्त्री-पुरुषों की जो आहुति चढ़ी, उसका विश्व इतिहास में संभवतः सादृश्य नहीं दिखाई देता। जिस पाकिस्तान को गांधीजी ने कभी मन और हृदय से स्वीकार नहीं किया, वह पाकिस्तान जिन्ना की अगुवाई में उन्हीं की आंखों के सम्मुख उन्हीं के अहिंसक आंदोलन को रक्तरंजित करते हुए रक्तपिपासु चरित्र के साथ धीरे धीरे खड़ा हुआ और देखते ही देखते सत्याग्रह, अहिंसा और सहिष्णुता की संपूर्ण तपश्चर्या को असत्य, घृणा, नफरत और असहिष्णुता की तलवार से चट कर गया।

पाकिस्तान के बारे में महात्मा गांधी ने 27 अक्टूबर 1943 को मीराबेन के एक सवाल के जवाब में कहा था कि- मैं तुम्हें पहले भी अपना मत बता चुका हूं कि पाकिस्तान नहीं बनेगा, क्योंकि मुसलमान खुद ही पाकिस्तान लेना पसंद नहीं करेंगे। पाकिस्तान आर्थिक दृष्टिकोण से चल नहीं सकेगा। राजनीतिक दृष्टि से भी वह कहीं नहीं टिकेगा। जिन्ना साहेब उसका रूप देखकर भयातुर हो उठेंगे और उसकी इच्छा ही त्याग देंगे। (बापू की कारावास कहानी, सुशीला नैयर,पृष्ठ 436, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन)

गांधी अपने इस आकलन के एक हिस्से में यथार्थ आकलन लेकर चल रहे थे। किन्तु उनका वह आकलन पाकिस्तान बनने के बाद के हालात को लेकर तो सच हो सकता था, उसके पूर्व की बिगाड़ी जा रही परिस्थितियों की काट खोज पाने में वह नाकाम था। वस्तुतः गांधीजी और कांग्रेस के अन्य नेता जिन्ना की मनोभूमिका का सटीक आकलन नहीं कर सके। उन्होंने पांथिक इस्लाम और सूफी इस्लाम के चेहरे को सत्य मानकर उसे अपने, कांग्रेस के और राष्ट्रजीवन तक के प्रत्येक कायदे में स्थान देने और दिलाने की कोशिश की, यहां तक कि सनातन धर्म और उसके राष्ट्र के प्रत्येक अंग-उपांग को कांग्रेस ने सेक्युलर रंग में रंग डालने की कोशिश की, किन्तु इतना सब करने के बावजूद कायदे-आजम के दिमाग में लगातार हलचल पैदा करने वाले राजनीतिक इस्लाम के झंडाबरदारों और बीते एक हजार वर्ष से संपूर्ण भारत को हरे रंग में रंग डालने की भयानक लीगी लामबंदी की मानसिक संरचना को बदल पाने में कांग्रेस के दिग्गज संभवतः रत्ती मात्र भी सफल नहीं हो सके। परिणाम क्या निकला? खान अब्दुल गफ्फार खान ने विभाजन के फैसले का विरोध करते हुए तब इसे ज्यादा गहराई से परिभाषित किया था कि-'हमें तो भेड़ियों के आगे फेंक दिया गया है।'

विभाजन की त्रासदी देखकर गांधीजी को खान अब्दुल गफ्फार खान के विरोध की अहमियत पता चल गई। किन्तु वह क्या कर सकते थे। बाजी उनके हाथ से निकल चुकी थी। उनकी आंखें गीली हो उठीं, उनके बुजुर्ग हाथ कांप उठे, उनका हृदय विभाजन की विभीषिका देखकर थर्रा उठा। वह जिस अहिंसक लाठी को लेकर अंग्रेजों से आजीवन जूझते रहे वह लाठी राजनीतिक-इस्लाम की तलवार के एक झटके से ही खंड खंड कटकर-टूटकर बिखर गई। जिन्ना की जिद के सामने गांधी जी और उनके प्रिय जवाहर लाल जी ने जीतेजी ही हार मान ली। विभाजन मेरी लाश पर होगा, कहने वाले गांधी जी मृत्यु की आखिरी सांस तक बंटवारे में मानवता को लगे घाव और संताप से उबर नहीं सके। अपने मानसिक संत्रास को उन्होंने पाकिस्तान के पहले भारतीय उच्चायुक्त श्रीयुत श्रीप्रकाश के सम्मुख आंसू भरी आंखों और लरजती जिह्वा से बयां किया था कि 'हमारा तो सारे जीवन का कार्य ही मिट्टी में मिल गया...।अब मेरी कोई नहीं सुनता..मैं क्या कहूं, किससे कहूं।'

ऐसा नहीं था कि गांधीजी को मुस्लिम सियासत के रक्तरंजित छल भरे चरित्र की जानकारी नहीं थी। वह सबकुछ जानते और समझते थे। विदेश से लौटकर भारत भ्रमण के समय जब वह पहली बार कुतुब मीनार सहित देश के अनेक ऐतिहासिक स्थलों के दर्शन हेतु गए तो उन्हें पग पग पर मुस्लिम सियासत के रक्तरंजित चरित्र के दर्शन हुए। बापू की कारावास कहानी में सुशीला नैयर इस तथ्य से पर्दा उठाते हुए लिखती हैं कि-'एक शाम को घूमते समय बापू बताते रहे कि कैसे वह एक बार कुतुब मीनार देखने गए थे। दिखाने वाला गाइड इतिहास का बड़ा विद्वान था। वह बताने लगा कि कुतुब के बाहर के दरवाजे की सीढ़ी से लेकर एक-एक पत्थर मूर्तियों का पत्थर है। गांधीजी के अनुसार, मुझसे यह सहन नहीं हुआ। मैं आगे बढ़ ही नहीं सका और मैंने गाइड से फौरन मुझे वापस ले चलने को कहा। मैं वापस आ गया।' सुशीला नैयर आगे लिखती हैं कि-'बापू जानते हैं कि मुसलमानों ने भारत में कितने अत्याचार किए हैं, फिर भी मुसलमानों के प्रति वे इतनी उदारता और प्रेम बरतते हैं। जबकि मुसलमान उन्हें गाली देते हैं तो भी बापू उनकी खातिर हिंदुओं से ही लड़ते हैं। यह चकित करने वाली चीज है। यही उनकी अहिंसा की कसौटी है।' (बापू की कारावास कहानी, सुशीला नैयर, पृष्ठ 127, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन)

स्पष्ट रूप से महात्मा गांधी साधारण मुस्लिम मानस को उसके राजनीतिक मनोभाव के अनुसार देखने के बजाए उसी मानवीय और सनातनी दृष्टिकोण से ही देखने के अभ्यासी थे जिसका यही संदेश आज भी भारत वर्ष के करोड़ों-करोड़ साधारण हिन्दुओं को अनुप्राणित करता है कि कण-कण में भगवान हैं। इस दृष्टि से मानव-मानव में, भले ही उनका पंथ कुछ भी क्यों नहीं हो, किसी प्रकार का भेद करना अनुचित और ईश्वरीय मार्ग के विरूद्ध है। लेकिन वस्तुतः जो दृष्टिकोण महात्मा गांधी समेत अन्य नेताओं ने मुस्लिम राजनीति को लेकर अपनाया था क्या वही दृष्टिकोण

मुस्लिम सियासत के सूरमाओं का भी था? यह प्रश्न आज की राजनीतिक परिस्थिति में फिर से प्रासंगिक होता दिखाई देता है।

मोहम्मद अली जिन्ना अपने राजनीतिक और सामाजिक जीवन के प्रारंभिक दिनों में अत्यंत भारत-निष्ठ थे किन्तु भारतीय राजनीति में गांधीजी के उदय के बाद वह लगातार अपनी सियासी-पांथिक चाल बदलते चले गए और अंत में यहां तक गए कि पाकिस्तान की मांग न माने जाने की दशा में उन्होंने डायरेक्ट एक्शन यानी सीधे देश को दंगे की आग में झोंक देने की कार्यवाही का ऐलान कर दिया। हर मोर्चे पर उन्होंने द्विराष्ट्रवाद के विष-बीज को खुराक दी। अंग्रेजों की समितियों और अनेक आयोगों के समक्ष उन्होंने कहा कि 'हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं, उनकी हर चीज अलग अलग है, संस्कृति और सभ्यता अलग है, उनमें कोई मेल नहीं है। 'जब उनसे यह प्रश्न किया जाता कि यदि ऐसा है तो फिर भारत के लाखों ग्रामों में, नगरों में हिन्दू और मुसलमान एक साथ सदियों से कैसे रहते चले आ रहे हैं, तब वह तपाक से उत्तर देते कि 'दोनों एक दूसरे से मुकाबला करते हुए रहते चले आ रहे हैं।'

जिन्ना और लीग के इस मत के विपरीत भारत की मौलिक एकता पर गांधीजी और उनके अनुयायियों ने जोर दिया। गांधीजी समेत अधिकांश भारतीय नेताओं ने अनेक अवसरों पर साफ किया था कि-हिन्दू और मुसलमान दोनों ही भारत की संतानें हैं, सदियों पूर्व हिन्दू ही किसी कारण से इस्लाम मत में दीक्षित हुए थे, दोनों के पुरखे समान हैं, उनकी विरासत सांझी है। पूजा पद्धति के आधार पर तो हिन्दुओं के भीतर भी अनेक मत-पंथ मौजूद हैं, किन्तु जैसे सभी हिन्दू साथ रहते है, उसी प्रकार मुसलमान भी अपनी उपासना पद्धति के साथ भारत में समस्त हिन्दुओं के साथ ही रहते हैं, उनमें परस्पर अलगाव विदेशी हुकूमत के कारण पैदा हो रहा है।

अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'पाकिस्तान के प्रारंभिक दिन' में श्रीयुत श्रीप्रकाश 1935 में केंद्रीय विधानसभा की पहली बैठक में पाकिस्तान नाम की एक पुस्तिका के वितरण का उल्लेख देते हुए लिखते हैं कि इस पुस्तक पर जनाब रहमत अली के हस्ताक्षर थे। यह कैम्ब्रिज, लंदन से प्रकाशित कर दिल्ली भेजी गई थी। इसमें अंग्रेजी अक्षर में PAKISTAN में प से पंजाब, अ से अफगानिस्तान, क से कश्मीर और स से सिन्ध का संकेत दिया गया था। श्रीप्रकाश लिखते हैं कि- 'पहले तो इस कल्पना पर अंग्रेज गृह सचिव हेनरी क्रिक के साथ जिन्ना हंसते थे लेकिन कालांतर में उनका रूप पूरी तरह से सांप्रदायिक होता दिखने लगा तो साफ हो गया कि जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमान पाकिस्तान की भावना के समर्थक होते चले गए हैं और इसमें अंग्रेजों की पूरी सहमति है।'

स्पष्ट है कि राष्ट्र जीवन की हजारों वर्ष पुरानी यात्रा में 1935 से 1947 के 12 वर्षों में ही भयानक मोड़ आ गया। काल की अप्रतिहत गति की जिस करवट को तत्कालीन सनातन हिन्दू राजनीतिक चेतना ने सुनने और समझने से इन्कार कर दिया, वह कालचक्र ही हिन्दुओं के गले में शिकंजे की तरह भयानक कसता चला गया। जब जब कोई समुदाय इस प्रकार के शुतुरमुर्गी आचरण में गर्दन फंसाकर कल्पनालोक में जीते हुए राजनीतिक संकटों से पार पाने के उपायों पर गंभीरता पूर्वक विचार विनिमय नहीं करेगा तो उसका परिणाम वही होगा जैसा कि 1947 में भारत का हुआ था। एक ओर स्वतंत्रता का उल्लास था तो दूसरी विभाजन की भयानक विभीषिका भी थी। इस्लाम की अंदुरुनी परिस्थितियों से पैदा हुई 'फोबिया-राजनीति' ने भारत को क्षत-विक्षत कर दिया तो पाकिस्तान को भी कहीं का नहीं रख छोड़ा। आज पाकिस्तान स्वयं की समस्याओं के भार से ग्रस्त होकर उबरने की आशा लिए कभी अमेरिका तो कभी चीन की चालों में फंसने को मजबूर है तो भारत के गले में पड़ी 'फोबिया-राजनीति' भविष्य के लिए 'गति-हंता' बनकर अभी भी गले से बाहर निकलने का नाम नहीं ले रही है, किंवा और ज्यादा गंभीर समस्याओं के दुष्चक्र में भारत को उलझाने का कारण बनती दिख रही है। इसके समाधान के लिए इतिहास का भारत के अनुकूल अध्ययन आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है जिसमें सहिष्णुता, समन्वय, शांति के वह सारे उपाय समाहित हैं जिनके द्वारा एकता के नए युग का सूत्रपात हो सकता है।

"स्पष्ट रूप से महात्मा गांधी साधारण मुस्लिम मानस को उसके राजनीतिक मनोभाव के अनुसार देखने के बजाए उसी मानवीय और सनातनी दृष्टिकोण से ही देखने के अभ्यासी थे जिसका यही संदेश आज भी भारत वर्ष के करोड़ों-करोड़ साधारण हिन्दुओं को अनुप्राणित करता है कि कण-कण में भगवान हैं। इस दृष्टि से मानव-मानव में, भले ही उनका पंथ कुछ भी क्यों नहीं हो, किसी प्रकार का भेद करना अनुचित और ईश्वरीय मार्ग के विरुद्ध है। लेकिन वस्तुतः जो दृष्टिकोण महात्मा गांधी समेत अन्य नेताओं ने मुस्लिम राजनीति को लेकर अपनाया था क्या वही दृष्टिकोण मुस्लिम सियासत के सूरमाओं का भी था? यह प्रश्न आज की राजनीतिक परिस्थिति में फिर से प्रासंगिक होता दिखाई देता है।"

मुग़ल मराठा युद्ध

संताजी घोरपडे के प्रेरक प्रसंग

सन् 1682 में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब अपनी विशाल सेना के साथ दख्खन में दाखिल हुआ। औरंगाबाद के नजदीक लगभग पच्चीस मील की परिधि में पांच लाख लोगों के लिए एक छोटा नगर बसाया गया था। इन पांच लाख लोगों में तीन लाख से भी अधिक सैनिक थे। औरंगज़ेब का उद्देश्य पूरे दख्खन में अपने पैर फैलाने का था। दख्खन की दो बड़ी सल्तनते, बीजापुर और गोलकुंडा उसके निशाने पर थी। छत्रपति शिवाजी के युवा उत्तराधिकारी छत्रपति संभाजी इस प्रक्रिया में शामिल एक आसान और सुनिश्चित विजय लक्ष्य थे।

अनीश गोखले

रात के अंधेरे और हल्की बारिश की आड़ में संताजी, बहिर्जी और विठोजी अपने चुने हुए सैनिकों के साथ शाही शामियाने की ओर बढ़ने लगे। जब तक छावनी को कुछ समझ आता वे औरंगज़ेब के शामियाने में घुसकर उसके अंग रक्षकों को मौत के घाट उतार चुके थे। तेजी से आगे बढ़ते हुए संताजी ने शाही शामियाने के रस्सियां काट डाली, जिससे कि शामियाना भरभरा कर गिर पड़ा।

जाहिर है, उस समय औरंगजेब यह कल्पना भी नहीं कर सकता था, कि बीजापुर के आदिलशाह और गोलकुंडा के कुतुब शाह को परास्त करने के बाद भी छत्रपति संभाजी के नेतृत्व में मराठें अजेय बने रहेंगे। सन 1682 से 1689 के बीच मुगलों और मराठों के बीच सौ से भी ज्यादा लड़ाइयां लड़ी गई और बावजूद इसके कि दख्खन की कहीं बड़ी सल्तनतों ने मुग़लिया तलवार के समक्ष घुटने टेक दिए थे, छत्रपति संभाजी का राज्य अक्षुण्ण बना रहा।

परंतु 1689 में अघटनीय घटना घटी। छत्रपति संभाजी कैद कर लिए गए। एक राजा जिसने एक पूरे दशक से मुग़लों को त्रस्त कर रखा था, अब औरंगज़ेब के कब्जे

माराठा साम्राज्यऔर इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक अनीश गोखले Battles of the Maratha Empire और Bramputra - The story of Lachit Barphukan के लिए चर्चित हैं।

में था। मुग़लों ने तय कर लिया कि छत्रपति संभाजी को एक मिसाल बना दिया जाए। पहले तो उन्हें विदूषक के कपड़े पहना कर ऊंट पर उनकी सवारी निकाली गई। फिर उनकी आंखें फोड़ दी गई और जुबान काट दी गई। अंततः इस परिस्थिति में कुछ दिन भूखा तड़पाने के बाद छत्रपति संभाजी का सर क़लम कर दिया गया। उनके क़लम कर दिए गए सिर को भाले की नोक पर रखकर विजय चिन्ह के रूप में सभी महत्वपूर्ण नगरों और गढों पर घुमाया गया। औरंगजेब्र यह सुनिश्चित करना चाहता था कि मराठे अच्छी तरह जान जाए कि उनके छत्रपति को मार दिया गया है।

छत्रपति संभाजी को इतने क्रूर तरीके से मारने के पीछे मुग़ल बादशाह का उद्देश्य मराठों में घबराहट फैलाना था। वह उनके दिलों में खौफ़ पैदा करना चाहता था। इतिहास में ऐसे अवसर आए हैं जब इस प्रकार की चाल कामयाब रही है - जैसे पानीपत की दूसरी लड़ाई या तालीकोट की लड़ाई। परंतु मराठों के अंदर तो स्वयं छत्रपति शिवाजी ने स्वराज्य के आदर्श भर रखे थे। इस वजह से छत्रपति संभाजी की हत्या का उन पर विपरीत प्रभाव पड़ा, व स्वराज्य के उच्च आदर्श के प्रति और अधिक समर्पित होकर वे मुग़लों के विरुद्ध क्रोध की भावना से एकजुट हो गए।

परंतु मुग़लों के विरुद्ध क्रोध की भावना भर से भीषण युद्धों में विजय संभव नहीं थी। मुगल अब भी सह्याद्रि में एक के बाद दूसरा गढ़ जीतने में जुटे हुए थे। ऐसे नाजुक मौके पर कुछ उत्साहवर्धन करने वाली विजयों की आवश्यकता थी, अन्यथा शीघ्र ही औरंगजेब के प्रति भड़का हुआ क्रोध हताशा में परिवर्तित हो सकता था। छत्रपति संभाजी के भाई राजाराम का नए राजा के रूप में राज्याभिषेक हो चुका था। परंतु सह्याद्रि की गोद में स्थित हिंदवी स्वराज्य के लिए परिस्थितियां निराशाजनक ही थी। मराठों के पास बमुश्किल आधा दर्जन किले बचे थे और संपूर्ण विनाश का खतरा उनके सामने आसन्न था। परंतु छत्रपति संभाजी की मौत के बाद की दो महत्वपूर्ण मुहिमो ने मराठों में वह जोश पैदा कर दिया जिसकी उन्हें सख्त जरूरत थी।

पहली मुहिम थी खुद औरंगज़ेब की छावनी पर साहसिक हमला! संताजी घोरपड़े ने उसी व्यक्ति को निशाना बनाने का फैसला किया जिस पर पूरे युद्ध की दारोमदार थी। वीर मराठा योद्धाओं ने स्वयं औरंगज़ेब की ही हत्या करने के लिए एक त्वरित हमले की योजना बना ली थी। उस समय मुग़ल बादशाह की छावनी कोरेगांव के नजदीक थी। उनका इरादा पूना के पास चाकण जाने का था। संताजी घोरपडे ने बहिर्जी घोरपड़े और विठोजी चव्हाण

पहली मुहिम थी खुद औरंगज़ेब की छावनी पर साहसिक हमला! संताजी घोरपड़े ने उसी व्यक्ति को निशाना बनाने का फैसला किया जिस पर पूरे युद्ध की दारोमदार थी। वीर मराठा योद्धाओं ने स्वयं औरंगज़ेब की ही हत्या करने के लिए एक त्वरित हमले की योजना बना ली थी। उस समय मुग़ल बादशाह की छावनी कोरेगांव के नजदीक थी। उनका इरादा पूना के पास चाकण जाने का था। संताजी घोरपडे ने बहिर्जी घोरपड़े और विठोजी चव्हाण के साथ मिलकर इस अभूतपूर्व हमले की योजना बनाई।

के साथ मिलकर इस अभूतपूर्व हमले की योजना बनाई। मराठों द्वारा बिछाया गया जासूसों का जाल इतना प्रभावी था, कि उन्हें औरंगज़ेब की छावनी का पूरा नक्शा मिल गया था। उन्हें उसके स्वयं के शामियाने तक की जानकारी मिल चुकी थी। उन्हें उसके शामियाने की अचूक स्थिति, उसका आकार आदि भी पता थे और उन्हें यह भी पता था कि उसकी विशेष पहचान उस पर लगे लाल झंडों से है। जासूसों को उसके शामियाने की रक्षा के लिए तैनात सुरक्षाकर्मियों की समय सीमाओं की भी संपूर्ण जानकारी मिली हुई थी। इस शामियाने के चार हिस्से थे और सामान्यतः औरंगज़ेब दौलत खाने में रहता था। यह उसका निजी कक्ष था। एक लकड़ी की बागड़ अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करती थी। इस प्रकार की तमाम छोटी-बड़ी सूचनाओं के आधार पर संताजी घोरपड़े ने रात के समय मुगल छावनी पर हमला बोल दिया।

मराठें चुपचाप छावनी में घुस गए। उनका प्रवेश करने का तरीका सरल लेकिन साहसिक था। दख्खन में आने के बाद से औरंगजेब ने कुछ मराठी भाषी सैनिकों को भर्ती कर रखा था। संताजी ने सुरक्षाकर्मियों को भरोसा दिलाया कि उसके साथ वही मराठी भाषी सैनिक है, और वे सब छावनी में घुस गए।

रात के अंधेरे और हल्की बारिश की आड़ में संताजी, बहिर्जी और विठोजी अपने चुने हुए सैनिकों के साथ शाही शामियाने की ओर बढ़ने लगे। जब तक छावनी को कुछ समझ आता वे औरंगज़ेब के शामियाने में घुसकर उसके अंग रक्षकों को मौत के घाट उतार चुके थे। तेजी से आगे बढ़ते हुए संताजी ने शाही शामियाने के रस्सियां काट डाली, जिससे कि शामियाना भरभरा कर गिर पड़ा। उस शामियाने की शान बढ़ाने के लिए उस पर दो सुनहरे गुंबद बने हुए थे। संता जी ने ये गुंबद काट लिये और उन्हें विजय चिन्हों के रूप में साथ लेकर वह अपने सैनिकों के साथ वहां से भाग निकले। ऐसा माना गया था, कि शामियाने के ढांचे के गिरने से औरंगजेब की मौत हो गई थी। परंतु संयोग से कुछ ही समय पहले औरंगजेब शामियाने से बाहर निकल गया था। मराठें, घोड़ों पर सवार होकर सिंहगढ़ पहुंच गए थे, जहां उस समय सिधोजी गुजर तैनात थे। ये वही सिंहगढ़ था जो मुश्किल से दो दशक पहले तानाजी मालुसरे की अदम्य वीरता का गवाह बना था। मुगलों ने संताजी की तेजतर्रार घुडसवार सेना का पीछा, यह जानते हुए छोड़ दिया कि वह सिंहगढ़ के अंदर पनाह ले लेंगे। परंतु संताजी गढ़ के नीचे के गांव में रुक कर इंतजार करते रहे।

इसी दौरान मुगल सेनापति जुल्फिकार खान मराठों की राजधानी रायगड पर डेरा डाले हुए था। संताजी घोरपडे ने सिंहगढ़ के ताजा दम सैनिकों को अपने साथ मिलाकर तेजी से रायगड की और कूच किया और जुल्फिकार खान की घेरा डालकर बैठी सेना पर पीछे से आक्रमण कर दिया। मुगलों को कतई उम्मीद नहीं थी कि औरंगजेब की छावनी पर हमले के तुरंत बाद संताजी की घुड सेना इतनी तेजी से यहां पहुंच जाएगी। वे पूरी तरह असावधान थे। सैकड़ों मुगल सैनिक मारे गए। रायगढ़ से पीछे हटकर मराठें पूर्व दिशा में स्थित विशालगढ़ की ओर बढ़ गए। यहां संताजी ने छत्रपति राजाराम को औरंगजेब के शामियाने के सुनहरे गुंबद भेंट स्वरूप प्रदान किए। छत्रपति ने प्रसन्न होकर संताजी को मामल कात मदार के ख़िताब से नवाजा। बहिर्जी घोरपड़े को हिंदू राव का ख़िताब मिला और विठोजी चव्हाण को हिम्मत बहादुर का ख़िताब अता किया गया। पूरे सह्याद्रि में औरंगज़ेब पर किए गए इस हमले की वजह से खुशी की लहर दौड़ गई थी।

संताजी घोरपड़े के इस साहसिक हमले की वजह से मराठों को जरूरी मानसिक लाभ और मनोबल तो प्राप्त हो गया परंतु एक व्यावहारिक अड़चन वैसी ही बनी रही। मुगल चारों ओर विजय दर्ज कर रहे थे और सह्याद्रि में मराठों के लिए कोई भी सुरक्षित स्थान उपलब्ध नहीं था।

इस परिप्रेक्ष्य में 1689 में रामचंद्र पंत द्वारा छेड़ी गई मुहिम महत्वपूर्ण बन जाती है। मराठा सेना का एक हिस्सा उत्तर में महिमतगढ़ की ओर और फिर आगे संगमेश्वर की ओर बढ़ गया। तत्पश्चात उन्होंने सातारा के पास सुंदरगढ़ और बसंतगढ़ पर कब्जा कर लिया।

उसी समय मराठा सेना की एक और टुकड़ी संताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के नेतृत्व में कोल्हापुर के दक्षिण की ओर निकल पडी, जहां उसने भुदारगढ़ पर मुगल सरदार शेख निज़ाम को पराजित कर दिया। यहां से संताजी और धनाजी उत्तर में रामचंद्र पंत के साथ शामिल होने चल पड़े।

इस मुहिम से सातारा और कोल्हापुर के आसपास का काफी बड़ा क्षेत्र मराठों को मिल गया, जहां से वे सैनिक और संसाधन जुटा सकते थे। इसी के साथ यह भी सिद्ध हो गया कि मराठे छत्रपति की गैरमौजूदगी में भी मुगल सेनाओं को पराजित कर सकते थे। इस मुहिम ने आने वाले 17 वर्षों के युद्ध संघर्ष की नींव रखी - ऐसा युद्ध जिसमें एक पूरी पुश्त खप गई और जिसका अंत मुगल साम्राज्य की पराजय से हुआ था।

अनुवाद - श्रीरंग पेंढरकर

A Myth - In Need of Serious Corrections

Prof l Himanshu Chaturvedi

There cannot be a better example than self to explain about, how a myth is created in a young mind of a student of history at graduate and post graduate level and further? And more to to say, that narratives of history shapes a thought process which is passed to generations l

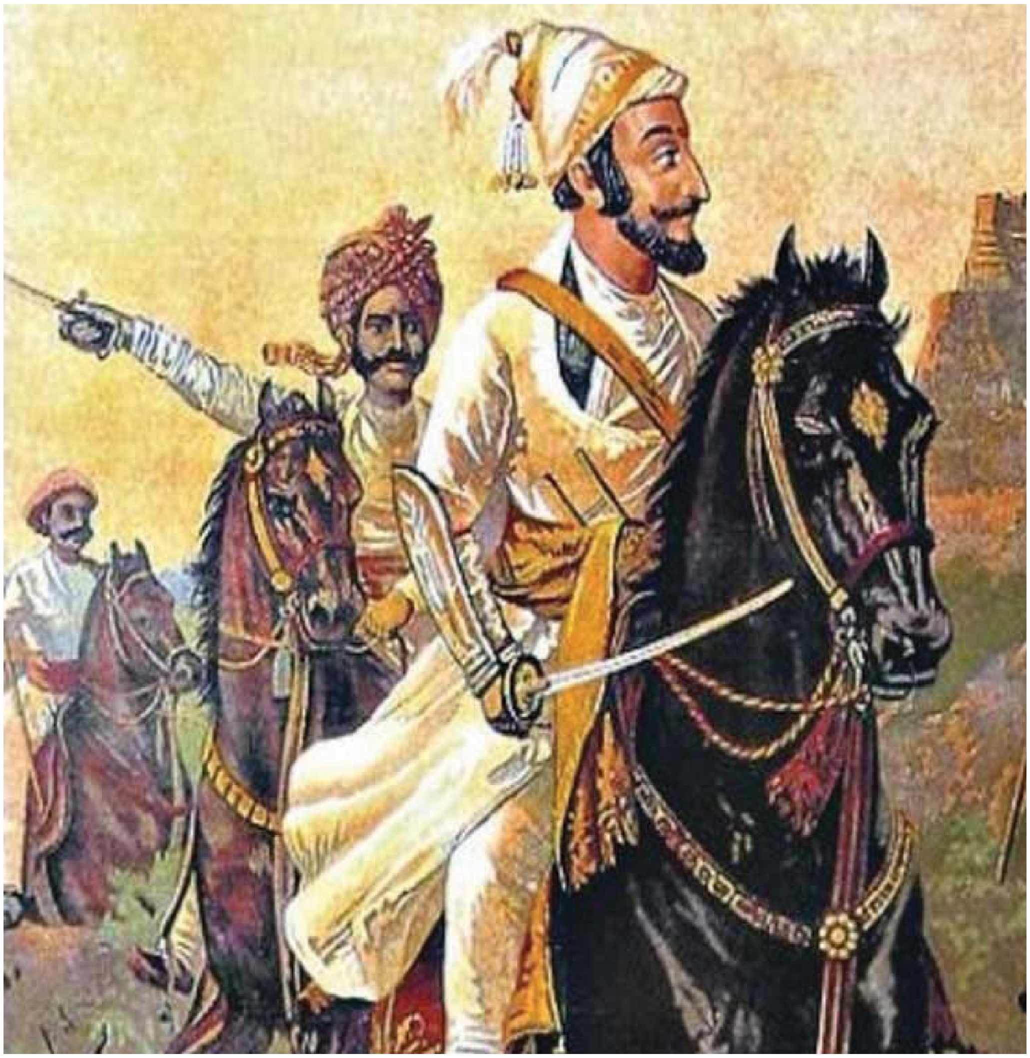

A vital question needs enquiry, amidst all such happenings, did Shivaji aim at a Hindu empire for India? A look at Shivaj's whole life closely discloses his intense regard for religion. He indeed carved for religious emancipation of his land than mere political dominion.

Writer is a Professor & Former Head, Department of Medieval History, DDU Gorakhpur University & Member ICHR, New Delhi

Such wrong impressions if carried for too long tend to become a reality and historical misinterpretations tend to shape the ideas of generations, for which one should owe regret. However, wrong to Nation's history is a deceit to individual's conscience, thus a de-colonized mind and deeper research is a necessity of time to rectify such misinterpretations to our history. Issue is- What/how myths were created in a young mind and why it needs serious correction?

Of a long series, one such vital myth that needs serious correction centers round the period of India's history from 1526 to 1707, classified as era of complete Mughal domination and during the said times, its being projected that, voices of resistance were nascent or regional in character, deriving impetus from political obligations (a modern terminology, extensively used by progressives) rather than cultural and nationalist. Such narrative either jeopardize the whole project or rather demean the very cause, dimensions and objectives of such uprisings of great resistance in nature. It has to be observed primarily that such uprisings had reflected the mood and support of the native masses. But unfortunately, pages of Indian history produced a narrative of dichotomy leading to false imaginations in young minds.

In one of my Article (2003) I tried to locate the issue of how such psyche was seeded and nourished. Exploring further, I came across an interview of Dr. B.B.Kumar (Chairman-ICSSR, 2016) in which he stated, 'NCERT books, published, had political agenda and they encouraged anarchist tendencies'. This forced me to seek and explore deeper as why Prof.

Firstly, India had no specific culture of its own before the 'arrival of Islam' and secondly, leaders like Tilak were catalysts to partition, as he used Shivaji as Nation's icon, who was simply a fugitive plunderer as per observation of Marxist historians and issue of nation building on Indian ethics was a wrong move thus, its not a nationalist protest against the Mughal rule, which has been glorified as 'Era' without challenges.

R.C.Majumdar was not suited to the Government of India during Nehruvian era to write a comprehensive history of India. It is a well known fact that sensing about the motives and objectives of the narratives needed by the policy makers at the top echelon, Prof . Majumdar refused to be a part of such a false narrative of Indian history. So generations, like me, suffered with historical amnesia. After denial from a nationalist historian to be a part of constructing a wrong history, whole project was then handed over to Tarachand, an employee in Education Ministry, thus evolved the official history suited to masters & State not truly worthy to the Nation to larger extent. This led to the production house of many myths misleading the generations. I would like to quote more such trend setters for the benefit of readers who are not technically well versed in history. In 1969 a trend setter lecture series was produced in context to the communalization in Indian History. Two essential rules of interpretation were laid down. Firstly, India had no specific culture of its own before the 'arrival of Islam' and secondly, leaders like Tilak were catalysts to partition, as he used Shivaji as Nation's icon, who was simply a fugitive plunderer as per observation of Marxist historians and issue of nation building on Indian ethics was a wrong move thus, its not a nationalist protest against the Mughal rule, which has been glorified as 'Era' without challenges.

Such narratives led to a belief that invader Mughals were the ultimate masters of the land from 1526 to 1707, a real myth, and Marathas and other movements were simply regional nascent voices with political motives . A sincere reader must examine the real control of Mughals over Indian subcontinent from 1526 to 1707. Babur, the fugitive from Central Asia, had partial political control from 1526 to 1530, Humayun was in exile for a longer period of time, Akbar took long to mature from a minor to a major. Jahangir, was controlled by a Junta throughout his reign. Only period of some ascendancy is that of Shahjahan, but challenged seriously by Ahoms and never could control Assam beyond Guwahati. Lastly the fall starts from Aurangzeb. So how whole of India was controlled is a matter of debate. Answer is, it never was- the 'hinterlands' were never in the control of Mughals.

Now, how to evaluate the concept of 'hinterlands' and myth of Mughal control? Perhaps, best example in history lies in the story of 'great escape of Shivaji from Agra to Rajgarh'. If we concentrate, for once, on the 'hinterland' (i.e. territories with no real control of the Mughals) then it simplifies the creation of myth. It's a known fact that not only Shivaji escapes but enroute to more than 1000 miles has not been captured by omnipresent present Mughal Empire is a matter of serious deliberation on the issue of real control of the aforesaid vigilant empire. The escape route had been controlled by primary and secondary zamindars, who on paper had submitted to Mughal sovereignty but practically had rarely never accepted it. But they did had tacit understanding of alien rule in India (R.C.Majumdar) This analysis, as a matter of fact, makes us understand the Hindu psyche and its reaction to Shivaji's escape. Let us briefly go through this episode and its silent indignation against the Mughal rule that ultimately gave way to 'national euphoria' and made Shivaji an 'All India figure' immediately on his grand escape. More so, let's examine his logic for taking a longer route of escape, as he travelled more than thousand miles instead of covering six hundred and seventy miles from Agra to Rajgarh. In the darkness of night he proceeded towards Mathura in the north. We can pose a question, why Mathura? (Prof.Heramb Chaturvedi) We know for sure that the earliest and shortest route available to Shivaji was to turn South-West from Agra, reaching his kingdom, through Malwa and Khandesh or Gujarat. Mathura was the place which bear the brunt of atrocities against the Hindu faith. It became a place of Hindu sufferings hence it was a symbolic visit and stoppage en route to Maratha country. From Mathura, he turned eastward to Prayag and finally southwards through Bundelkhand, Gondwana and Golkunda. It seems to have been a safer route, because of the 'hinterland factors' over which Mughals had hardly any real control.

Secondly, he must have desired to have first hand information about the Hindu sentiments against the Mughal rule in Northern India, especially in the holy cities of Mathura, Prayag and Benares, which later became the basis for the concept of 'Hindu Pad-Pad Shahi' and further gave justification and legitimacy to their demands in north and a basis for the surge in North! So the reality of hinterlands is suggestive enough of how far and deep was the control of Mughals- en route to Shivaji's escape.

Its pertinent to add here that almost during the same period, another great Hindu power- the 'Ahoms' were fighting as nationalist power against Mughals and never let the so called imperial power to march beyond Guwahati. In total eighteen battles are recorded as a testimony to Mughal failure but a great Ahom commander, Lachit Borphukan, is a vanished name from Indian history, so all this needs attention.

So the resistance against Mughals was widespread well before the death of Aurangzeb and these resistances in practicality are short instinct of Mughal rule, find little or no space in the pages of Indian history, designed by NCERT, thus leading to creation of Myth in generations after independence. A Myth of a power on all India canvass projected as an ultimate rule. Important historian Marshall, asserts, regarding valid assertion of 'Mughal hinterlands' that, there was no direct Mughal inheritance and different patterns of the rule were in existence.

Further, to talk about State sponsored history, one has to explore sensitively into the writings of R.C.Majumdar, as he is of the opinion that 'so far as the Hindus were concerned, there was no improvement either in their moral or material conditions or in their relations with Muslims, with the sole exception of Akbar's half regime. Thus, a sincere reader of history has to understand, as to how far so called 'Great Mughals' were controlling India. It is self suggestive that Shivaji without the support of locals could never have covered thousand miles, undetected. And it's a historical fact that before 1653 a cohesive independent State with ministers and officials charged with definite duties came into being in Maharashtra.

A vital question needs enquiry, amidst all such happenings, did Shivaji aim at a Hindu empire for India? A look at Shivaj's whole life closely discloses his intense regard for religion. He indeed carved for religious emancipation of his land than mere political dominion. One has to look deep into Ramdas, who has exquisitely described this spirit of Shivaji in his acclaimed work 'Anandvana-Bhuvah'. The religious presentation practiced by Muhammad Adil Shah and Aurangzeb moved Shivaji intensely and influenced all his decisions. So with purpose the cultural nationalist movement was projected as a petty regional movement of political nature by State sponsored history, leading to further myth projection in concinnity.

Later on, Hindu Pad-Pad Shahi became a national song of resistance. What has been stated earlier has to be substantiated by historical facts, and that has been truly substantiated. its worth putting on record that where ever the Hindu arms met those of Muhemmadans before 1627, the Hindus lost, for a short period because of the sudden disappearance or death of their leader, through a treachery of their ministers here or a commander there. One has to recall Dahir's fate, Jayapal's fight, Anangpal's stand, Prithviraj's cause, the black day of Kalinagar Sikri, Devagiri to Talakota. But the hand of Shivaji took hold of this cursed destiny of our people and never again had the Hindu flag to bend before Mohemmadans crescent. Thus it was 'Hindavi Swaraj' as depicted by Shivaji himself.

So the Myth of Mughal Imperial power over all India canvass needs objective analysis along with historical facts suggesting the Maratha challenge to alien culture as there can't be a denial that British gained India at the cost of Maratha Empire, not Mughal.

A less known yet glorious chapter of Indian History

(As forest-fire is to the forest trees, a leopard to the deer-herds and a lion to the stately elephants; as the sun is to the darkness of the night, as Krishna was to Kansa, so was king Sivaji, a lion, towards the hordes of Mlechchas।)

'Written By Poet Bhushan and quoted by Swami Vivekanand'

Dr। Rajeev Tewari

After the death of Shivaji Maharaj, Aurangzeb decided to finish Maratha league and began his journey towards south in later half of 1681with an enormous army of 5 Lakh soldiers, which was four times the number of Maratha Army.

Dr. Rajeev Tewari is a practicing surgeon at Delhi. He did his MBBS course from KGMC, Lucknow and finished his master's course (MS is Surgery) in 1986 from KGMC. He specialises in Laparoscopic surgery. Writing and teaching undergraduate students are his passion. He likes writing on Indian history and Hindu Mythology and recent Geo-political issues.

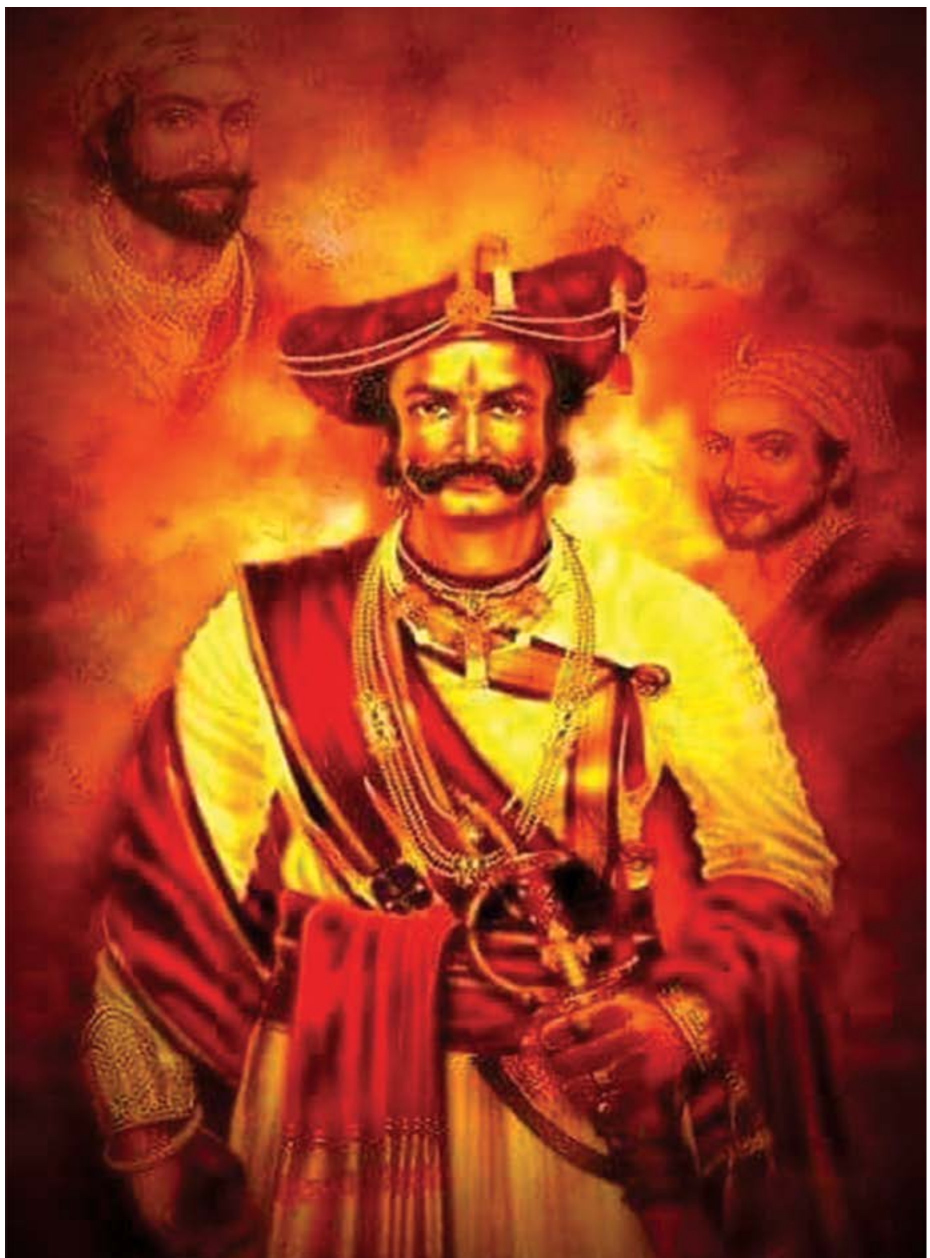

दावाद्रुमदंडपरचित्तामृगझुंडपर,
भूषणबितंडपरजैसेमृगराजहैं.

तेजतमअंशपरकाह्नजिमकंसपर,
त्योंमिलेच्छवंसपरशरशिवराजहैं॥

Mughal Maratha war lasted for 27 years in which the flame kindled by Chhatrapati Shivaji Maharaj became the conflagration of Mughal Empire. This war started in 1681 and ended with Aurangzeb's death in 1707. Aurangzeb put everything he had on stake and lost it all. His reputation, army, wealth, power and peace. He died in 1707 as a lost and broken man. Mughal empire became so weak by the end of this long war, it eventually collapsed in few decades. This war happened over a vast area which includes today's Maharashtra, MP, Karnataka, Gujarat and Tamil Nadu.

At the time of his death in 1680, Shivaji left a huge legacy and a vast empire with Raigadh as its capital for Sambha Ji his son. But his empire was surrounded by enemies all around. Portuguese on northern side (Goa), British in Mumbai, Siddies in Konkan and Deccan sultanates in Karnataka were unfriendly to Marathas but Mughal empire Aurangzeb was their main enemy who wanted to settle scores with them decisively.

Aurangzeb was a religious bigot who was ruthless, he imposed sharia law and allowed forced conversion and destroyed thousands of temples. He imposed Jizya tax on Hindus and forbade Hindus from riding in Palanquin. His main dream was to defeat Marathas and eventually cross Narmada and include Deccan plateau in his empire. The Narmada river was the landmark between Deccan, the Marathas' area, and the North ruled by Mughals.

By late 17th century Rajput resistance had subsided and Deccan sultanate had become weak so after the death of Shiva Ji Maharaj in 1680, Aurangzeb planned to attack and eliminate Maratha empire. At that time Maratha empire was young with a history of mere 50 years. Aurangzeb thought it would be just few months task. But he underestimated the resilience and bravery of Marathas. What he thought as a few months job, lasted for 27 long years and finally led to his death and collapse of Mughal empire.

Shivaji's had made Marathas in Deccan a power to reckon with. He made a strong framework after winning and fortifying lots of forts in Konkan and Sahyadris. He established

strong navy to control Western ports to clamp Deccan sultanates. These Sultanates attacked Shivaji Maharaj many times but always tasted defeat.

After the death of Shivaji Maharaj, Aurangzeb decided to finish Maratha league and began his journey towards south in later half of 1681with an enormous army of 5 Lakh soldiers, which was four times the number of Maratha Army. He brought huge wealth and plentiful of Artillery. He even allied with Portuguese, British,Siddis, Golkonda and Bijapur Sultanates and planned a deadly death trap for Marathas. He made Aurangabad his capital and in 1681 laid siege at fort Ramsej.

Thus the 27 year long lasting Mughal Maratha war started which can be divided in three time zone:

1: Marathas under King Sambhaji (1680 to 1689)

2: Marathas under King Rajaram (1689 to 1700)

3: Marathas under Rani Tarabai (1700 to 1707)

Marathas under King Sambhaji (1680 to 1689):

1n 1681 Aurangzeb sent his general Hussein Ali Khan to attacked Northern Konkan which Sambha ji defended well and pushed him back to Ahmednagar.

When the monsoon arrived and all Major military operation halted Aurangzeb tried to ally with Portuguese to use Goa harbour for Mughal Ships. When Sambhaji got this news he attacked Portuguese territories and pushed them deep inside Goa.

Sambhaji had to leave Portuguese expedition and came back because massive Mughal army was gathering in southern areas. Aurangzeb with his huge army moved to Ahmednagar and divided his forces in two parts making two of his princes, Shah Alam and Azam Shah in charge of each faction.

In 1683 Aurangzeb moved to Ahmednagar and planned pincer technique where Shah Alam was to attack from South Konkan and Azam Shah would attack from northern Maratha territory.

Shah Alam after crossing Krishna river entered Belgaum and started marching north. But his supply chain was cut by Marathas and they forced him to starvation. So, first pincer attempt proved a blunder.

At the later half of 1684, Aurangzeb's sent his general Shahbuddin Khan to attack Maratha capital, Raigad but Maratha defeated him. Then Aurangzeb sent Khan Jehan to help him but he too was defeated by Marathas Commander in Chief Hambirao Mohite in a fierce battle at Patadi. Mughals had to suffer heavy losses in this battle.

In early 1685, Shah Alam attacked south again but was again defeated by Sambhaji's army.

So finally in 1685-86 Aurangzeb changed his plan and tried to capture Golkonda and Bijapur. Both of them were allies of Marathas. But Marathas launched a counter attack on the North coast at Bharuch. Though Aurangzeb won Bijapur but Sambhaji took many Bijapur sardars in Maratha army.

One of the best story of Indian

By late 17th century Rajput resistance had subsided and Deccan sultanate had become weak so after the death of Shiva Ji Maharaj in 1680, Aurangzeb planned to attack and eliminate Maratha empire. At that time Maratha empire was young with a history of mere 50 years. Aurangzeb thought it would be just few months task. But he underestimated the resilience and bravery of Marathas.

history is 'The story of Siege of Ramsej'

By the end of 1681, Aurangzeb sent Mughal forces to laid siege of Fort Ramsej. His father Shah Jahan had also begun his Deccan campaign by attacking Ramsej Fort probably because this fort guarded the important trade routes.

Shahabuddin Khan along with Hayat Khan and Dalpat Rao laid the siege. They had an army of many thousand soldiers and had also brought in large cannons and heavy artillery. Inside the fort, number of Maratha soldiers was in few hundred only. According to some historians Marathas did not even had cannons inside the fort they used woods and animal hides to make guns and cannon balls. The small Maratha contingent defended the fort adamantly and did not allow any breach to happen.

After Four months of siege one Mughal commander Qasim Khan tried to enter the fort via a tower which failed due to Marathas valour and huge number of his soldiers got wounded or killed.

So, finally after 6 months Aurangzeb recalled Shahabuddin Khan and sent Khan-e Jahan Bahadur as a new commander. This Mughal Sardar was one of Aurangzeb's most senior commanders. But the handful of Maratha soldiers once again resolutely defended the fort. In a few months, even Khan e Jahan Bahadur was withdrawn but Aurangzeb asked him to pay Rs 37,000 into the royal treasury, since he had promised the result yet failed.

Finally after 7 years the Maratha's hounered the killedar who defended the port for his bravery and he was transferred to a bigger fort. In 1688 the fort finally went to the Mughals not through war but they bribed the new Killedar and simply purchased the fort.

Some say it was a bribe while some say the Marathas themselves sold the fort since it was no longer financially viable and they utilized the money to keep the flame burning elsewhere.

Finally in Dec 1688 Sambhaji called for a strategic meeting to decide a final blow to Aurangzeb at Sangmeshwar. One of his brother in law turned traitor and told his location to Mughals. He was surrounded by Mughal Army and finally captured in February 1689. Once again India was failed not due to lack of bravery but her own traitors. Aurangzeb gave him an option to convert to Islam but Sambha ji refused. On his refusal he suffered worst inhuman treatment. His tongue was cut, eyes were gorged out. His body was cut, abdomen opened and intestine removed while he was alive and finally his body pieces were fed to dogs.

Marathas under King Rajaram (1689 to 1700)

After Sambhaji's death Rajaram succeeded as the next king. The barbaric death of Sambha ji angered all Maratha generals and councilmen. They gathered at Raigad fort and with unanimous decision made Rajaram their king, thus commenced the second chapter of this illustrious war.

By the end of 1689 Aurangzeb presumed the Marathas would be all restrained but it proved wrong.

In March 1690 the Maratha commanders of Santaji Ghorpade launched a daringattack on Mughal army and sacked the tent where the Aurangzeb himself slept. Luckily he survived as he was elsewhere but his private force and bodyguards were killed.

But then Marathas faced another loss due to treachery and Raigad fell due to treachery of Suryaji Pisal. Sambhaji's queen Yesubai and their son, Shahu were captured. His son could only be released after 20 years.

Mughal forces, led by Zulfikar Khan attacked fort Panhala but it was gallantly defended by Marathas and they inflicted heavy losses on Mughal army. Finally Aurangzeb himself came and won Panhala.

Maratha ministers expected an attack on Vishalgad so they ask Rajaram to leave Vishalgad for Jinji. Marathas made Jinji (Presently in Tamil Nadu) their capital where he lived for next 7 years. While going to south to Jinji the queen of Bidnur, gave them supplies and free passage.

Aurangzeb was annoyed by Rajaram's successful escape so he kept most of his force in Maharashtra and sent a part of his force to keep Rajaram in check.

But the two Maratha generals, Santaji ghorpade and Dhanaji attacked and destroyed the force sent by Aurangzeb.

In late 1691 Aurangzeb had taken four major forts in Sahyadris and was sending Zulfikar khan to fort Jinji.

So Marathas made a new strategy of multipronged fight. They started executing their plan in 1692. They recaptured Rajgad and Panhala and by 1693 they captured Rohida and soon even took Vishalgad too. A young Maratha Naval officer Kanhoji Angre took fort Kolaba. While other Maratha commander were launching raids on Mughal armies on East front. Santaji defeated Kasim Khan in the Battle of Athani. So, now the Marathas were waging a war from the Malwa plateau to the east coast.

Aurangzeb was confounded and confused. He had killed one Maratha King and second king was driven away yet Marathas were not discouraged rather they were offensive.

Two Marathas commanders Santaji and Dhanaji wreaked havoc in whole deccan area.

Santaji and Dhanaji attacked Mughal forces near Jinji. Dhanaji Jadhav attacked Ismail Khan and defeated him and Santaji Ghorpade attacked Ali Mardan Khan and captured him.

Santaji and Dhanaji attacked Mughal forces near Jinji. Dhanaji Jadhav attacked Ismail Khan and defeated him and Santaji Ghorpade attacked Ali Mardan Khan and captured him.

Julfikar khan, who was orchestrating Jinji siege, left the siege. Santaji then diverted his forces to Bijapur. Aurangzeb sent another general Kasim Khan for Santaji. But Santaji attacked Kasim Khan and forced him to take refuge in Dunderi fort. Santa ji surrounded the fort till most of the Mughal soldiers starved and Kasim Khan committed suicide. Then Aurangzeb sent Himmat Khan to reinforce Kasim Khan with heavy artillery. Santaji attacked him in sudden ambush and killed Himmat Khan and confiscated all Mughal's weapons and ammunition.

Now Aurangzeb was really frustrated. He has realised that fighting with Marathas was the biggest mistake of his life. He gave

ultimatum to Zulfikar khan to finish Jinji fort task but Rajaram fled and was safely escorted to Deccan. Marathas defended Jinji till January of 1698. This gave Rajaram enough time to reach Vishalgad.

Though Jinji fell but it took Mughals 7 years and the damage Mughal empire incurred was enormous. The Royal treasury due to these wars were leaking like asieve.

Meanwhile two of main commanders of Marathas, Dhanaji Jadhav and Santaji Ghorpade did not have cordial relation. Nagoji Mane, one of Dhanaji's men, killed Santaji. Death of Santaji's death rejuvenated Aurangzeb army.

After a long and depressing 20 year long war, the pressure, strain and stress had started appearing in Mughal camp by 1701. Some senior counsellors advised Aurangzeb to end the war and go back. The toll and loss of this war on Mughal empire was much bigger than originally thought. But Aurangzeb still insisted on the war.

Rajaram made Dhanaji the next commander in chief and divided Maratha army into three divisions under Dhanaji, Parshuram Timbak and Shankar Narayan. They defeated large Mughal army at Pandharpur, Pune, Baglan, Nashik and Nandurbar.

Now Aurangzeb was so enraged he himself took charge and laid siege to Panhala and attacked the fort of Satara. The Marathas defended Satara six months till April of 1700 before conceding but this curbed Aurangzeb's strategy to win as many forts as possible before monsoon.

Unfortunately in March of 1700 Rajaram died and his queen Tarabai took charge of Maratha army.

Marathas under Rani Tarabai (1700 to 1707)

For Next seven year Tarabai proved her true mettle. Thus under the leadership of Tarabai began the phase 3, the last phase of the Mughal Maratha war

After a long and depressing 20 year long war, the pressure, strain and stress had started appearing in Mughal camp by 1701. Some senior counsellors advised Aurangzeb to end the war and go back. The toll and loss of this war on Mughal empire was much bigger than originally thought. But Aurangzeb still insisted on the war.

Aurangzeb laid siege at the fort of Parli (Sajjangad). Marathas defended the fort until monsoon and then retreated quietly when monsoon started. This was a very effective plan of Marathas. They used to keep Mughal's Army busy at one fort till monsoon then they used to retreat. It was not possible for Mughal army to move during monsoon. The Mughal army used to bear heavy loss by flash floods in the rivers around. These same tactics were used at Panhala and even for Vishalgad.

In this attack, by 1704 after spending several years and huge amount of wealth Aurangzeb could only win Torana and Rajgad and a handful of forts. Tarabai proved to be an effective and brave leader. Even after 24 years of constant war he was not even an inch closer to defeating Marathas from where he started. Mughal's Royal treasury was empty, they were not in position to defend. Now Marathas started pushing Mughals towards North and Mughal provinces fell one after other.

Finally in 1705, two Maratha army factions crossed Narmada the traditional

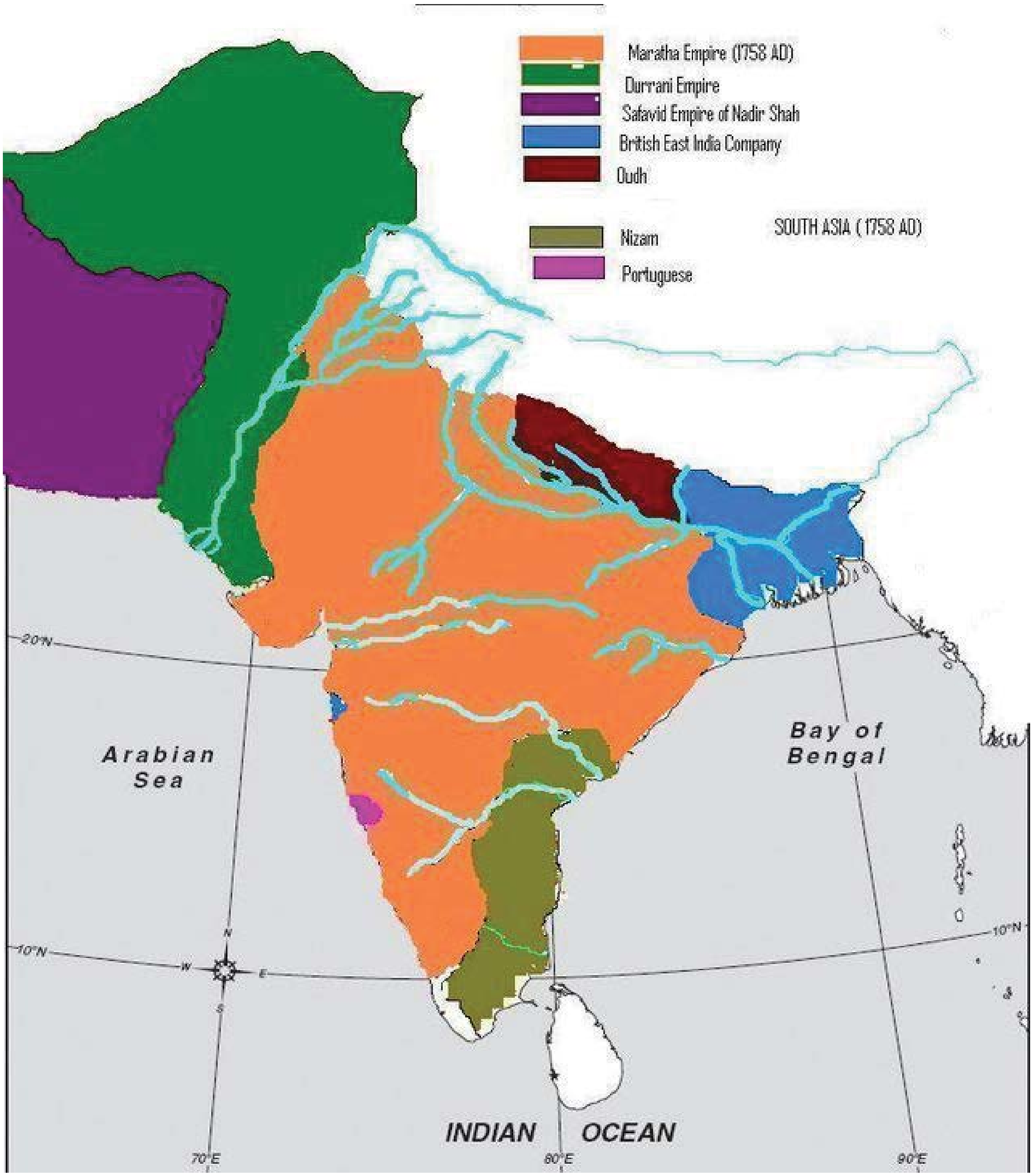

Maratha Empire in orange (Political Map of South Asia around 1758 AD)

barrier between north and south.

Maratha commander Dabhade attacked Bharoch and West and with his eight thousand men defeated Mahomed khan's forces having almost double the number in his army. The second commander Nemaji Shinde hit as deep North as Bhopal.

Meanwhile Dhanaji marched into Sahyadris and won almost all the major forts back in short time. Parshuram Timbak won Satara and Parali forts. Shankar Narayan took Sinhgad.

Now disheartened Aurangzeb started negotiations with Marathas but stopped midway and attacked a small kingdom called Wakinara. Dhanaji then turned his forces to Wakinara. He helped the Naiks in Wakinara in fight. Finally Wakinara fell, but the royal family of Naiks successfully escaped without any major loss.

Aurangzeb was now a frustrated old man. He had now given up all hopes and he planned to retreat to Burhanpur. Dhanaji Jadhav again attacked him and destroyed guards of his imperial army. Zulfikar Khan rescued the emperor and they successfully reached Burhanpur.

Aurangzeb was helpless now. He was witnessing bitter fights among his sons in his last days. He was depressed, bankrupt and far away from home.

he died as a sad man on 3rd March 1707. 'I hope god will forgive me one day for my disastrous sins', were his last words.

Though In our history book Aurangzeb is depicted as a great victorious king but in reality he died as a lost man.

Shiva ji Maharaj developed a very effective way of countering 'Sultan Dhava' technique of Mughal's way of war with his own Guerrilla 'Ganimi Kawa' technique. Sultan Dhava technique was attack with full force, encircle the enemy and cut of his supply of food, water and ammunition and bring him to his knees. While Ganimi Kawa was Guerrilla technique of fighting. In which attack was done with small troops at various location. Attack when the enemy is unprepared and is least expecting and to cause maximum damage in very short time then simply retreat. In harsh and uneven terrain like mountain, valleys, Forrest this technique was very effective. This war technique devised by Shivaji made it possible for small troops of Marathas to defeat massive army of Mughals.

English journalist and historian **John Clark Marshman** says:

Twenty years before Aurungzeb had marched from his capital in all the pride and pomp of war; he was now returning to it in a state of humiliation, with the wreck of a broken army, pursued by a victorious foe, and he expired at Ahmednagar on the 27th February, 1707

According to **Stanley Wolpert** an indologist:

This war was costing an estimated 1 lakh lives a year during its last decade. The expense in gold and rupees can hardly be accurately estimated. Aurangzeb's encampment was like a moving capital – a city of tents 30 miles in circumference, with some 250 bazaars, with a 1⁄2 million camp followers, 50,000 camels and 30,000 elephants, all of whom had to be fed, stripped the Deccan of any and all of its surplus grain and wealth ... Not only famine but bubonic plague arose ... Even Aurangzeb, had ceased to understand the purpose of it all by the time he was nearing 90 ... 'I came alone and I go as a stranger. I do not know who I am, nor what I have been doing,' the dying old man confessed to his son, Azam, in February 1707

According to **Dr Koenraad Elst** There was no gtreat Mughal era but a continuous phase of war-

'What some call the Muslim period in Indian history, was in reality a continuous war of occupiers against resisters, in which the Muslim rulers were finally defeated in the 18th century' Dr Koenraad Elst

In what far-off country, upon what obscure day I know not now, Seated in the gloom of some

Mahratta mountain-wood O King Shivaji, Lighting thy brow, like a lightning flash,This thought descended,' Into one virtuous rule, this divided broken distracted India, I shall bind.'- Nobel laureate Rabindranath Tagore

Kashi ki Kala Gayee,

Mathura Masid Bhaee;

Gar Shivaji Na Hoto,

To Sunati Hot Sabaki!

(Kashi has lost its splendour, Mathura has become a mosque;If Shivaji had not been, All would have been circumcised (converted)

– Kavi Bhushan (c. 1613-1712) was an Indian poet

Finally by 1750s when Marathas were at their peak they were ruling whole of North and west India.

हिन्दवी स्वराज्य

हिन्दवी स्वराज्य

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

"इस्लामोफोबिया यानी इस्लाम की राजनीतिक और संगठित शक्ति से डरने की एक बीमार मनोदशा का नाम इस्लामोफोबिया है। कुछ लोग इसे मुसलमानों से डरने या डराने का नाम भी देते हैं। आज के हालात में राजनीति में इस्लामोफोबिया एक बड़ा मुद्दा है। अलग अलग विश्लेषक इसका आकलन अलग अलग रूपों में करते हैं।"

शताब्दी पीठ आचार्य, भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

इस्लामोफोबिया

दो सौ साल पहले मुगलिया सल्तनत के ढहते समय का ये करुण विलाप है। इस्लाम प्रेरित राजनीति का यह अत्यंत आततायी वह पन्ना है जिसे मुगलों ने ही जन्म दिया था और जिसकी आग में मुगल खुद भी भस्म हो गए थे। भयानक दुख की गाथा है। 1786 से 1788 की तारीखें मुगल इतिहास में एक भयानक हृदय विदारक रक्तिम कांड की गवाह हैं। इतिहास की ये तारीखें गवाह हैं कि किस प्रकार मुस्लिम सियासत के एक क्रूर समूह द्वारा शाह आलम के 27 बच्चे भूख से तड़प-तड़प कर लालकिले में ही मार डाले गए या मरने को मजबूर कर दिए गए। जिनकी रगों में बाबर-हुमायूं-अकबर-जहांगीर-शाहजहां-क्रूर औरंगजेब का रक्त दौड़ता था, वे सारे मासूम बच्चे महीनों तक उसी लालकिले में रोटी के एक निवाले को तरसा दिए गए। अंतिम सांस ले रहे कई बच्चों की लाशें तो यमुना में जिंदा रहते ही बहा दी गईं। बादशाह शाह आलम-2 की बेगमें और बेटियां उसी लालकिले में महीनों तक मुसलमानों के एक समूह द्वारा रोज बलात्कार का शिकार हुईं। खुद शाह आलम की आंखें पहले क्रूरता के साथ सलाखें घोंपकर फोड़ दी गईं और बाद में गरम चाकू डालकर आंखें सदा के लिए निकाल दी गईं, और ये उन लोगों ने किया जिन्हें शाह आलम द्वितीय ने ही पाला-पोसा था, जिन्हें इस्लामिक कायदों के मुताबिक राजनीति की सीख दी गई थी, जिनकी जानें शाह आलम ने बख्श दी थीं और जिन्हें कुरान की दुहाई देकर ऐसा न करने की कसम रो रोकर उसने खुद कितनी बार दी थीं। शाह आलम ने उस पर अत्याचार बरपाने वाले गुलाम कादिर से रो-रोकर कहा था- 'कम से कम इन आंखो को बख्श दो कादिर। ये आंखें पैगंबर का संदेश पढ़ती हैं, पिछले साठ साल से कुरान की आयतें पढ़-पढ़कर रौशन हुई हैं। इन्हें बख्श दो गुलाम कादिर, इन्हें बख्श दो।' लेकिन इस्लामिक सियासत के क्रूर अंधे सिपहसालारों पर शाह आलम की किसी अपील का कोई असर नहीं हुआ। कैसे हुआ यह सब कुछ? प्रस्तुत है उसी पर यह आमुख कथा...

भाग एक : इस्लाम के भीतर का डर

भारत में इस्लाम की राजनीतिक ताकत के ताबूत में आखिरी कील किसने ठोंकी थी? कुछ लोग कहेंगे मराठों ने? सिखों ने? जाटों और गूजरों ने? इन सभी को मिलाकर संगठित होकर उभरी हिन्दू राजनीतिक शक्ति ने या फिर अंग्रेजों ने? या खुद इस्लाम के लामबंद कुछ जागीरदारों ने ही मुगलिया सल्तनत का बोरिया-बिस्तर दिल्ली की सरजमीं से उखाड़ फेंका था?

'इस्लामोफोबिया' यानी इस्लाम की राजनीतिक और संगठित शक्ति से डरने की एक बीमार मनोदशा का नाम इस्लामोफोबिया है। कुछ लोग इसे मुसलमानों से डरने या डराने का नाम भी देते हैं। आज के हालात में राजनीति में इस्लामोफोबिया एक बड़ा मुद्दा है। अलग अलग विश्लेषक इसका आकलन अलग-अलग रूपों में करते हैं। सवाल है कि क्या इस्लामोफोबिया केवल गैरमुस्लिम बहुल समाज और देशों में ही पनपने वाली किसी राजनीतिक बहस का नाम है या फिर इसकी जड़ें खुद मुसलमानों में भी उतनी ही गहरी हैं। इस्लाम की राजनीति के हवाले से अगर देखा जाए तो साफ हो जाता है कि हजरत मोहम्मद साहेब के बाद इस्लामिक राजनीति पर कब्जे की जंग में हिंसा, क्रूरता और बर्बरता ने जितने जुल्म गैरमुस्लिमों पर ढहाए, उसके शिकार मुसलमान भी कम नहीं हुए।

इस्लामिक सियासत से पैदा होने वाले 'इस्लामोफोबिया' का ये करुण क्रंदन है। इसमें हिन्दू या किसी अन्य गैरमुस्लिम शख्सियत या उसके पीछे खड़े राजनीतिक समूह की मनोभावनाओं का सवाल ही कहां आता है। इसमें पहला तीर तो राजनीतिक इस्लाम की सरजमीं से छूटता है, छठी सदी यानी इस्लाम के जन्म के समय से ही यह छूटता चला आ रहा है, रक्तपिपासु सियासी तलवार तब से म्यान से बाहर है और आज के तब्लीगी, जमाती, तालिबानी, मुजाहिदीन और आईएसआईएस के संस्करणों के साथ इसकी धार हर बीते दिन और ज्यादा लपलपाती तीखी होती चली गई है। डर लगना तो स्वाभाविक ही है, यह डर किसी के जरिए फैलाया हुआ नहीं है, यह डर तो सियासी इस्लाम के भीतर से इस्लामी समाज में ही पैदा होता और फैलता चला गया है जिसकी लरजती लहरों के जरिए पैदा होने वाले चढ़ते-उतरते ज्वार-भाटे ही अक्सर गैरमुस्लिमों को डराते दिखाई देते हैं। लेकिन ये डर पहले इस्लाम को ही भीतर से भयभीत मानसिकता में ले जाता प्रतीत होता है।

राजनीति की टेढ़ी चालों में पाकिस्तान के कद्दावर सियासी नेताओं के साथ क्या घटनाएं घटित हुई हैं, उसके संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना, लियाकत अली खान से लेकर भुट्टो और अभी मियां मुशर्रफ और नवाज शरीफ तक की तारीख गवाह है और पड़ोस में बांग्लादेश की राजनीति में उसकी स्थापना में पाक-आर्मी द्वारा निर्दोष बंगीय मुस्लिमों के कत्लेआम से लेकर उसके संस्थापकों में शुमार शेख मुजीबुर्रहमान की जिन्दगी के अलविदा कहने तक इस्लामोफोबिया कैसे कैसे खुद अपने समाज को और गैरमुस्लिमों को इस्लामिक राजनीति का फलसफा समझाता आया है, उसको समझे बगैर आज की राजनीति में 'इस्लामोफोबिया' की बहस बिल्कुल ही बेमतलब और बेमानी सा प्रतीत होता है।

कोई बताता नहीं है, इतिहासकार मुंह चुराते हैं, बड़े-बड़े बौद्धिकदां अधकचरी बहसकर कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं। उन सवालों के जवाब कहीं से नहीं मिलते जिन्हें खुद लालकिले के चहारदीवारी के भीतर उन नन्हें मासूमों ने पूछा था जो जहांपनाह आलमगीर औरंगजेब के विशाल साम्राज्य का भार ढोने के लिए पैदा हुए नूर थे। 'इस्लामोफोबिया' का ये सवाल लालकिले की प्राचीर के भीतर ही सबसे पहले उठा था, लेकिन कोई उन तारीखों की ओर नजरें नहीं डालता है क्योंकि इससे खुद के भीतर हर वक्त कुलबुलाने वाला भयानक रूप बेपर्दा हो जाने का डर रहता है। कोई इस रूप को देखना भी पसंद नहीं करता। यहां गुरुपुत्रों के बलिदान का प्रश्न नहीं उठाया जा रहा है। यहां उत्तर से दक्कन तक असंख्य निरपराधों पर चलाई गई तमाम शमशीरों का भी सवाल नहीं उठाया जा रहा है। कुछ ही दशक पहले 'डायरेक्ट एक्शन' करने वाले जो डर उस दौर के समाज में पैदा कर गए, उसका भी कोई सवाल नहीं है। तब से लेकर अभी हालिया दिल्ली दंगों तक भी किसी 'फोबिया' का कोई सवाल इसमें नहीं है। सवाल है कि बहादुर शाह जफर (अंतिम मुगल शासक) के बाप-दादे और परदादों के साथ दिल्ली के लालकिले में किस 'फोबिया' ने खूनी खेल खेला था।

1761 के पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद तेजी से ढह रहे मुगलिया सल्तनत की यह तस्वीर जो देखे-पढ़े और समझे तो उसका कलेजा फटे बिना नहीं रह सकता। 1761 के पानीपत के तीसरे संग्राम में मराठे खेत रहे। मराठा योद्धाओं और जवानों की एक पूरी पीढ़ी ही पानीपत के रण में अब्दाली के अफगान लड़ाकों के साथ अंतिम सांस तक जूझते हुए मातृभूमि की मिट्टी में चिरनिद्रा में लीन हो गई0 इतिहास स्रोतों के अनुसार, पैंतीस हजार से ज्यादा योद्धाओं

ने विश्वास राव और सदाशिवराव भाऊ के बलिदान हो जाने के बाद तबतक भीषण संग्राम जारी रखा जबतक कि एक की भी सांस चलती रही। इसी के साथ 40हजार के करीब तीर्थयात्री भी अब्दाली की क्रूरता का शिकार हुए जो उत्तर भारत की आध्यात्मिक यात्रा पर निकले थे। इतिहासकार जदुनाथ सरकार के अनुसार - इस युद्ध में हर मराठा परिवार ने अपना कोई ना कोई सगा-संबंधी गंवा दिया। हजारों परिवारों का तो पूरा ही खात्मा हो गया। महादजी शिन्दे यानी महादजी सिंधिया ही किसी तरह युद्ध भूमि से अपनी टुकड़ी के साथ सुरक्षित लौट सके थे। 1762 में अहमदशाह अब्दाली दिल्ली का तख्त अपने वफादार सिपहसालार नजीबउद्दौला को सौंपकर वापस कंधार चला गया। कहते हैं कि कंधार में उसकी मृत्यु बहुत भयानक हुई। उसका पूरा चेहरा युद्ध के दौरान आई किसी भयानक चोट के बाद संक्रमण का शिकार हो गया, उसकी नाक तो पूरी ही सड़ गई जिसमें कीड़े पड़ गए। वह कुछ भी खाने की कोशिश करता था तो उसके मुंह में कीड़े भी उतनी ही तेजी से भोजन में जाकर मिल जाते थे। बेहद बुरी हालत में कई साल बिस्तर पर पड़े पड़े ही उसने दम तोड़ दिया।

पानीपत की हार में भगवा राजनीति ने मैदान तो गंवाया था लेकिन मनोबल उतनी ही तेजी से आसमान पर दोबारा छाने लगा। पेशवा ने तो साल भर के भीतर ही रणभेरी बजा दी कि दिल्ली का तख्त उलटकर ही मानेंगे, लालकिले पर भगवा निशान पड़कर रहेगा। स्वराज्य के वीरों ने फिर से दिल्ली कूच की तैयारी कर ली। पानीपत से उठे दुख के बादल ज्यों ही छंटे त्यों ही रणबांकुरे अपनी खोई ताकत दोबारा बटोरकर समूचे उत्तर भारत को अफगानों के आतंक से मुक्तकर भगवा रंग में रंगने के लिए मचल पड़े। हिन्दवी स्वराज्य का स्वप्न प्रत्येक मराठा में फिर से जीवित और जागृत हो उठा जैसे माटी का कर्ज ही वसीयत बनकर हर मराठा दिल में गरज रहा था। जैसा कि अहमदशाह अब्दाली ने पेशवा को लिखे अपने खत में मराठों की वीरता को सलाम लिखा और यह भी संकेत दे दिया कि वह मराठों से दोबारा युद्ध लड़ने से बेहतर अपने वतन जाना पसंद करेगा।

दूसरी ओर दिल्ली की राजनीति की एक त्वारीख प्रयागराज यानी इलाहाबाद के किले में संगम किनारे भी लिखी जा रही थी जहां अक्टूबर 1764 में कंपनी से बक्सर की लड़ाई की हार के बाद मुगलिया सल्तनत के नज़रे नूर बादशाह शाह आलम द्वितीय दिल्ली के लालकिले में फिर से वापसी का स्वप्न संजोकर अंग्रेजों से संधि के लिए मजबूर हो चुके थे। इलाहाबाद की इसी संधि में बंगाल, बिहार और ओडिशा के सभी राजस्व और दीवानी के मामले शाह आलम को अंग्रेजों के सुपुर्द करने पड़े। मुगल सम्राट को इसके बदले अंग्रेजों से 26 लाख रुपये की वार्षिक पेंशन भी मिली, इलाहाबाद और कड़ा के किले भी शाह आलम को मिल गए।

इस प्रकार अंग्रेजों के संरक्षण में शाहआलमद्वितीय के दिन बीत रहे थे। लेकिन दिल में एक गुबार था कि दिल्ली के लालकिले से दोबारा राजपाट संभालने का सुअवसर मिल जाए। वह उचित समय की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि समय ने दरवाजे पर दस्तक दे दी। अहमद शाह अब्दाली के द्वारा दिल्ली की सूबेदारी संभाल रहे रोहिल्ला सरदार नवाब नजीबुद्दौला की मौत हो गई और लालकिले से दिल्ली की कमान उसके बेटे रोहिल्ला सरदार ज़ाबिता खान के अनुभवहीन कमउम्र कंधों पर आ गई। शाह आलम ने इसे उचित अवसर जान लिया और मराठों के पास मैत्री संदेश भेजकर दिल्ली को नियंत्रण में लेने के लिए सहायता की गुजारिश की। मार्च 1771 में दिल्ली को रोहिल्ले मुसलमानों के नियंत्रण से आजाद कर फिर से मुगलिया सल्तनत का परचम लालकिले पर फहराने को लेकर हिन्दवी मराठाओं और शाह आलम के बीच समझौता इलाहाबाद के किले में सम्पन्न हुआ। इसके बदले मुगल बादशाह ने मराठा शक्ति को साथ लेकर देश में फिर से स्वराज का नया सूर्योदय करने का सपना जगाया। वक्त की कैसी ये करवट थी कि मुगलिया सल्तनत के जिसे उत्तरी पाए तख्त दिल्ली के आलमगीर औरंगजेब ने स्वराज्य समर्थकों को धूल में मिला देने का संकल्प लिया, जिसे पानीपत के रण के बाद अफगानों ने बिल्कुल ही समाप्तप्राय मान लिया, वही मराठा शक्ति मिट्टी से उछलकर दिल्ली सल्तनत के माथे का तिलक करने फिर से रण में डट गई थी।

मराठों ने पलक झपकते ही दिल्ली को रोहिल्लों से आजादकर लालकिले को नियंत्रण में ले लिया। रोहिल्ला सरदार जाबिता खान अपने लड़ाकों समेत मराठों के दिल्ली में घुसने की खबर सुनते ही रण छोड़कर भाग खड़ा हुआ। पानीपत के तीसरे युद्ध के महज 10 साल के भीतर दिल्ली की सरजमीं पर मराठा सेनाएं विजेता बनकर खड़ी थीं। जामा मस्जिद के ठीक सामने लालकिले की प्राचीर पर केसरिया झंडा फहर चुका था। फरार जाबिता खान के सारे परिजन मराठों के पैरों तले गिरे पड़े थे, जाबिता का मासूम बेटा गुलाम कादिर खान रोहिल्ला, उसकी बीवियां और तमाम कारकून अपने समूचे कुल-खानदान समेत मराठों की ममता की छांव में जीवन की भीख पा गए। केसरिया वीरों ने एक भी निर्दोष की जान लिए बगैर दिल्ली में सत्ता परिवर्तन का कार्य पूर्ण कर दिया और शाह आलम को दिए गए वचन को निभाने के लिए इलाहाबाद-प्रयागराज से बादशाह के दिल्ली आने की राह देखने लगे।

इधर इलाहाबाद में ईस्ट इंडिया कंपनी और शाह आलम के बीच संधि हो चुकी थी, अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने भी कंपनी से संधि कर शाह आलम के साथ भविष्य को लेकर चिंतन-मंथन शुरु कर दिया। बक्सर की लड़ाई में दोनों ही कंपनी के खिलाफ एकजुट होकर लड़े थे लेकिन बक्सर की हार ने रास्ते जुदा कर दिए। अरसे बाद इलाहाबाद में दोनों साथ मिले क्योंकि ईस्ट इंडिया कंपनी ने सारी सैन्य शक्ति को मिट्टी में मिला दिया था। शाह आलम ने दिल्ली कूच की तैयारी शुरु की तो नवाब शुजाउद्दौला और अंग्रेज कमांडरों ने सावधान किया कि दिल्ली मराठों के नियंत्रण में है इसलिए वहां जाना खतरे से खाली नहीं। हो सकता है कि मराठे वचन निभाने की जगह बादशाह को ही सदा के लिए जमीन से अलविदा कर दें। लेकिन शाह आलम मराठों के विरुद्ध किसी भी प्रकार का धोखा होने जैसी बात मानने को तैयार नहीं हुए। नवाब शुजाउद्दौला ने अनूपगिरी नामक एक साधू और उसके अखाड़े के दस हजार घुड़सवारों के साथ अपनी सैन्य टुकड़ी भी शाह आलम के साथ दिल्ली भेजने का फैसला लिया। दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी अपनी दो बटालियन फौज शाह आलम के दिल्ली कूच की सुरक्षा में तैनात कर दी। इस पूरे दिल्ली कूच की कमान शाह आलम ने अपने नए सेनापति और कुशल योद्धा मिर्जा नज़फ खान के हवाले कर दी।

नज़फखान ईरान के साफवी वंश का योद्धा था, नादिर शाह ने उसके परिवार को सत्ता से उखाड़ फेंका था। किसी तरह जान बचाकर वह 1740 में अपनी बहन के साथ भारत भाग आया। उसकी बहन अवध के नवाब परिवार में ब्याही गई। उसने प्लासी के युद्ध में और बक्सर के युद्ध में संयुक्त सेनाओं के साथ अंग्रेजों से युद्ध भी किया था। प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला का खास सिपहसालार था और युद्ध में मीर जाफर की गद्दारी से मिली हार के बाद उसने दिल्ली के बादशाह शाहआलमद्वितीय के खेमे में शरण ले ली थी। 1764 में जब इलाहाबाद के किले में अंग्रेज-मुगल संधि हुई तो वह वहां मौजूद था।

इस प्रकार मई 1771 में शाह आलम करीब 20हजार योद्धाओं की फौज लेकर दिल्ली कूच पर निकल गया। मन में मराठों के दिए वचन को लेकर उम्मीद और सपना था कि फिर से लालकिले से शाही हुकूमत के दिन फिरेंगे। दिल्ली पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के समय शाह आलम ने सुरक्षा समेत कई कारणों से लालकिला छोड़ देने का फैसला लिया था और अब करीब 12 साल के स्वघोषित निर्वासन और कंपनी सरकार के सामने बार-बार मिली पराजय की ठोकरें खाने के बाद शाह आलम मराठों के कंधे से अपनी खोई बागडोर वापस लेने का स्वप्न देख रहा था। मई-जून 1771 में भयानक गर्मी और फिर भारी बारिश के कारण शाह आलमद्वितीय को फर्रुखाबाद के पास नबीगंज में कैंप करने के लिए मजबूर होना पड़ा। मुश्किल ये थी उस वक्त फर्रुखाबाद का इलाका रुहेलखंड यानी मुगलों के शत्रु रोहिल्ला सरदार जाबिता खान की फौजी टुकड़ियों के अधीन हो चुका था। मराठों के भय से जाबिता खान ने मेरठ के आगे पत्थरगढ़ के दुर्ग में शरण ली थी और वह वहीं से समूचे रुहेलखंड के इलाके में अपने ठिकाने मजबूत कर रहा था। इधर फर्रुखाबाद में शाह आलम ने डेरा डाला उधर रोहेले पठान मुसलमानों की छापामार फौज की आंखों में चमक आ गई कि शाह आलम को दिल्ली पहुंचने से पहले ही सदा के लिए समाप्त कर दिया जाए।

शाह आलम के काबिल सेनापति नज़फ खान को इस बात का अंदेशा था, लिहाजा उसने दोहरी

दिल्ली की राजनीति की एक तारीख प्रयागराज यानी इलाहाबाद के किले में संगम किनारे भी लिखी जा रही थी जहां अक्टूबर 1964 में कंपनी से बक्सर की लड़ाई की हार के बाद मुगलिया सल्तनत के नज़रे नूर बादशाह शाह आलम द्वितीय दिल्ली के लालकिले में फिर से वापसी का स्वप्न संजोकर अंग्रेजों से संधि के लिए मजबूर हो चुके थे। इलाहाबाद की इसी संधि में बंगाल, बिहार और ओड़िसा के सभी राजस्व और दीवानी के मामले शाह आलम को अंग्रेजों के सुपुर्द करने पड़े। मुगल सम्राट को इसके बदले अंग्रेजों से 26 लाख रूपये की वार्षिक पेंशन भी मिली, इलाहाबाद और कड़ा के किले भी शाह आलम को मिल गए।

दिल्ली की राजनीति की एक तारीख प्रयागराज यानी इलाहाबाद के किले में संगम किनारे भी लिखी जा रही थी जहां अक्टूबर 1964 में कंपनी से बक्सर की लड़ाई की हार के बाद मुगलिया सल्तनत के नज़रे नूर बादशाह शाह आलम द्वितीय दिल्ली के लालकिले में फिर से वापसी का स्वप्न संजोकर अंग्रेजों से संधि के लिए मजबूर हो चुके थे। इलाहाबाद की इसी संधि में बंगाल, बिहार और ओड़िसा के सभी राजस्व और दीवानी के मामले शाह आलम को अंग्रेजों के सुपुर्द करने पड़े।

चाल चली। एक अपनी अगुवाई वाले 20 हजार योद्धाओं को किसी भी आपात हमले का सामना करने के लिए तैयार रहने का निर्देश दिया और दूसरी ओर शाह आलम से मराठा नायक महादजी शिंदे को संदेश भिजवा दिया कि वह दिल्ली की बजाए अपनी एक सैनिक टुकड़ी के साथ फर्रुखाबाद की छावनी में ही आकर फौरन मिलें। यहीं से शाह आलम मराठों की छत्रछाया में दिल्ली कूच करेंगे। जाबिता खान के संभावित खतरे पर मराठों की भी नजर उसी तरह गड़ी थी जैसे कि नज़फ खान की।

महादजी सिंधिया ने संदेश मिलते ही फर्रुखाबाद की ओर रुख किया जिसका समाचार मिलते ही शाह आलम पर घात लगाने के इरादे से रवाना हो रहे रोहिल्ले सरदारों ने खुद को पीछे ही रोक लिया। महादजी जब फर्रुखाबाद में शाह आलम से मिले तो सवाल वही था जो अवध के नवाब शुजाउद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसरों ने खड़ा किया था कि इस बात की क्या गारंटी है कि मराठे लालकिले में शाहआलमद्वितीय की ताजपोशी बगैर किसी विघ्न के हो जाने देंगे। यह सवाल महादजी से खुद शाहआलमद्वितीय के बेटे प्रिंस अकबर ने उठाया। महादजी ने सवाल के पीछे की आशंकाओं को समझ लिया और साफ किया कि इसका जवाब बादशाह के सामने ही वह देंगे।

प्रिंस अकबर के साथ महादजी शिंदे ने जैसे ही शाहआलमद्वितीय के दरबार में कदम रखे, सारे मुगल सरदार और दूसरे नवाबों की आंखे महादजी की आंखों पर टिक गईं। मराठा सरदार ने शाहआलमद्वितीय के सामने खुद झुककर सलामी पेश की तो सारी सभा वाह वाह सरदार कह उठी। शाहआलमद्वितीय ने भावपूर्ण मन के साथ महादजी शिंदे का उठकर स्वागत किया। अपने स्वर्ण सिंहासन के ठीक बगल में बिठाकर एक सम्राट की तरह उनकी अगवानी की। इस प्रकार महादजी और शाह आलम ने उस दौर की सियासत के सभी सवालों के जवाब एक झटके से ही हर खेमे को दे दिए।

मराठा शक्ति जो उस वक्त लालकिले पर कब्जा कर चुकी थी, उसके सबसे बड़े योद्धा ने बादशाह सलामत के सामने सर झुका दिया है, यह समाचार जंगल में आग की तरह सैनिक छावनी में फैल गया। एक खुशी की लहर दौड़ गई कि मराठों ने शाहआलमद्वितीय को दिए हुए वचन के अनुसार दिल्ली का बादशाह मंजूर कर लिया है, अब दिल्ली पर मुगलों के कब्जे में कोई अड़चन शेष नहीं। महादजी शिंदे ऊर्फ महादजी सिंधिया का सर झुकाना उस वक्त की भारतीय राजनीति मे बहुत बड़ी बात थी। वह चाहते तो जाबिता खान के इलाके में फंसे शाह आलम को रोहिल्ला सरदारों की आपसी मार-काट में कटने-मरने के लिए छोड़ देते और लालकिले को सदा के लिए पेशवा के नियंत्रण में लिए जाने का ऐलान दिल्ली में कर देते। लेकिन युगों से दिए वचन की लाज रखने और वचन निभाने की जो भारतीय राजनीति की परंपरा थी, उस परंपरा की लाज रखने के लिए महादजी शिंदे ने इतिहास का एक बड़ा अवसर छोड़ दिया। खुद की बजाए शाहआलमद्वितीय को दिल्ली तख्त का सम्राट घोषित कर दिया।

कहते हैं कि प्रिंस अकबर, प्रिंस जवान बख्त और अपने सत्ताइस दूसरे मासूम बच्चों को लेकर जब शाहआलमद्वितीय दिल्ली ने शहादरे के रास्ते यमुना पारकर कदम रखे तो उसकी आंखों में आंसुओं का समंदर उमड़ पड़ा था। दिल्ली दरवाजे के भीतर मुगलों के बसाए शाहजहानाबाद की उजाड़खंड तस्वीर देखकर उसके होश उड़ गए। दिल्ली इतनी उदास हो चुकी थी कि अपने बादशाह की लालकिले में वापसी पर भी कोई उत्सव नहीं था। रमजान महीना खत्म हो रहा था इसलिए इदुलफितर के लिए दरियागंज और जामा मस्जिद में जुटे मुसलमानों ने बादशाह का रास्ते में स्वागत किया।

मुगल जहांपनाहों की कड़ी में फिर से एक बार मुगलिया रक्त उस मयूर सिंहासन पर आसीन होकर सर पर मयूर मुकुट का स्पर्श कर रहा था जिसकी असल कृति और प्रतिकृति दोनों ही नादिरशाह और अब्दाली के हमलों के बीच कब का भारत का साथ छोड़ चुकी थी। सोन चिरैया का देश इस्लामिक सियासत की बंदरबांट में ऐसे भयानक अंधेरे रास्ते में उड़ चला था जहां हर तरफ दानवता ही दानवता बिखरी पड़ी थी। शाह आलम ने लालकिले में कदम तो बड़ी उम्मीद से रखे थे कि वह फिर से और मराठों की सहायता से भारत की ताकत का डंका दुनिया में बजा सकेगा लेकिन होनी को कुछ और ही मंजूर था। मुस्लिम सियासत के कद्रदां मुगल बादशाह के खात्मे को लेकर जो संदेह मराठों पर कर रहे थे, उसका खलनायक तो मुगलिया सल्तनत के हरम में ही रह रहा था।

भाग दो : सल्तनते शाह-ए-आलम, दिल्ली से पालम !

ईस्वी सन 1771 में रमजान के महीने की आखिरी तारीख। इदुलफित्र के दिन शाह आलम द्वितीय ने लालकिले पर पूरे गाजे-बाजे के साथ अपनी सिंहासन वापसी की रस्म अदायगी पूरी की। लालकिले को एक बार फिर से सजाया गया। चारों ओर रोशनी के खास बंदोबस्त हुए। बाग-बगीचों की रंगत फिर से खिल उठी। बेतरतीब जंगल की तरह उग आए सारे झाड़-झंखाड़ को कांट-छांटकर फिर से सारी बागवानी संवारी गई। यमुना के वो सारे जलस्त्रोत खोल दिए गए जिनसे किले के भीतरी हिस्सों में नहरों और फौव्वारों को जलापूर्ति होती थी।

1772 का साल शुरु होते ही शाह आलम का राज-पाट सबकुछ लालकिले में पटरी पर आने लगा। लालकिले के भीतर की सारी व्यवस्थाएं चाकचौबंद हो चली थीं। दरबार सजने लगे, फरियादियों की आवाजाही भी शुरु हो गई लेकिन दरबार में सबसे बड़ी मुश्किल यही कि ज्यादातर शिकायतें उन मामलों को लेकर थीं जिनमें मुगलिया सल्तनत का कोई नियंत्रण ही नहीं रह गया था। राजपाट का क्षेत्राधिकार महज दिल्ली से पालम तक मानो सिमट गया था। उन दिनों चारों ओर लोगों की जुबां पर यही शब्द गूंजते थे -

सल्तनते शाह-ए-आलम, दिल्ली से पालम।

यहां तक कि दिल्ली के पास महरौली और मैदानगढ़ी तक मुगल सत्ता के क्षेत्राधिकार से बाहर हो चुके थे। दिल्ली के चारों ओर या तो जाट राजा नवल सिंह की हुकूमत थी या फिर गूजरों के क्षत्रप अपना स्वशासन कायम कर चुके थे। किसी के ऊपर भी अब लालकिले की बादशाहत का वो भय नहीं रहा था जो भय कभी औरंगजेब ने अपने आततायी व्यवहार से पैदा कर दिया था।

शाह आलम के सामने उन रोहिले अफगान व मुस्लिम लड़ाकों ने भी अस्तित्व की चुनौती पहले से प्रस्तुत कर रखी थी जिन्हें अहमद शाह अब्दाली वरदहस्त देकर कंधार वापस चला गया था। केंद्रीय मुगल साम्राज्य की ऐसी लचर और कमजोर हालत में बादशाह शाह आलम-द्वितीय ने जब अपने प्रमुख दरबारियों और सहयोगियों की पहली 'कैबिनेट' बैठक बुलाई तो उसमें अपने बाद सबसे अहम जगह पर महादजी सिंधिया को सम्मान से बिठाया। सर्वोच्च सेनापति और सल्तनत के वजीर नज़फ खान ने बैठक का सारा इंतजाम संभाला। जो बातें पहले से तय थीं, उनकी घोषणा सरे-दरबार कर दी गई।

1- दिल्ली से आगरा तक की जो भूमि और किले मुगलों के नियंत्रण से निकल चुके हैं, उन्हें वापस लिया जाएगा।

2- मैदानगढ़ी के किले समेत दीघ के जाट राजा नवल सिंह के कब्जे से सारे दुर्ग छीन लिए जाएं। इनमें ऐसे भी दुर्ग थे जिनकी दीवारें दोहरी थीं, भीतर पत्थर की और बाहर से सैकड़ों फीट मोटी मिट्टी-सुर्खी आदि से बनी जिस पर तोप से दागे गए गोले धंसकर बेकार हो जाते थे। बैठक में निर्देश दिए गए कि हिसार, हांसी और आगरा तक सभी किलों पर फिर से मुगलिया परचम फहरा दिया जाए।

3- अब्दाली की ओर से सूबेदारी संभाल रहे मरहूम नवाब नजीबुद्दौला के बेटे रोहिल्ला सरदार जाबिता खान और उसकी सेना का संपूर्ण सफाया किया जाए जिन्होंने अहमद शाह अब्दाली का साथ ही नहीं दिया बल्कि उसके बाद राजधानी में मौजूद मुगल खानदान की कई बहू-बेटियों समेत निर्दोष लोगों की इज्जत को तार-तार किया।

हिन्दू आस्था के सम्मान की कसम

इतिहास के कुछ स्त्रोत बताते हैं कि शाह आलम ने केंद्रीय राजनीति के प्रत्येक बिन्दु पर मराठों और खासकर हिन्दू भावनाओं के सम्मान के लिए विशेष हिदायत अपने सभी दरबारियों को दी और मुगलिया सेनाओं को हिन्दू आस्था के विषयों में पूरी विनम्रता और सद्भावना से पेश होने के आदेश भी जारी किए गए। जाहिर है कि मराठा शक्ति के सहयोग से खोई सत्ता दोबारा मिल जाने के कारण इतना आदेश निर्गत करना तो बादशाह का फर्ज बन ही रहा था। मराठों का भरोसा कायम रखने के सिलसिले में पूरे राज्य में मंदिरों का संरक्षण, तीर्थस्थानों का सम्मान और पूर्ण गोहत्याबंदी का फरमान भी शाह आलम-2 और वजीर नज़फ खान ने इसके बाद अलग-अलग मौकों पर जारी किया।

अरसे बाद लालकिले की प्राचीर से ढोल ताशे बजाकर किसी मुगल बादशाह की ओर से जारी कोई निर्देश जनता को सुनाया जा

रहा था। बादशाह के हुक्म पर अमल की तैयारियां तेजी से शुरु हो गईं। हालांकि मुगल फौज की हालत ऐसी नहीं थी कि सभी निर्देश फौरन लागू कर दिए जाते। शाही फौज के पास मुश्किल से 20हजार योद्धा थे, अलग से महंत अनूपगिरी की अगुवाई में 10हजार घुड़सवारों की सेना जिसमें ज्यादातर नागा अखाड़े से जुड़े हुए थे, यह सेना भी शाह आलम-2 के सहयोग में जुटी थी। हालांकि दूसरी ओर महादजी सिंधिया 75000 मराठा योद्धाओं की विशाल अश्वारोही, ऊंट, हाथियों से सजी-धजी चतुरंगिणी सैन्य बल के साथ दिल्ली में डटे हुए थे। जाहिर तौर पर मराठा सैन्यबल से सहयोग लिए बगैर मुगलिया सल्तनत को दोबारा अपने पैरों पर खड़ा कर पाना केवल बादशाह शाह आलम और उनके वजीर नज़फ खान के बस में नहीं था।

मुगल सेना ने बदले की आग में जलकर वो सबकुछ कर डाला जो उसे नहीं करना चाहिए था लेकिन मुश्किल ये थी कि उन्हें कौन रोकता। उसमें से कोई भी मुगल सिपाही ऐसा नहीं था जिसके सगे-संबंधियों और परिजनों के साथ रोहिले पठानों ने कोई करम बाकी रखा था।

रोहिल्ले मुसलमानों का सफाया!

यही कारण है कि वजीर नज़फ खान ने मराठा सैन्य टुकड़ी की मदद से पहला अभियान जाबिता खान के खिलाफ शुरू करना तय किया। लालकिले से भागकर फरार जाबिता खान ने उस वक्त हरिद्वार के आगे गंगा पारकर नजीबाबाद के पत्थरगढ़ दुर्ग में अपनी फौजी टुकड़ी के साथ शरण ले रखी थी। नजीबाबाद के किले में ही जाबिता खान के पिता और अब्दाली द्वारा नियुक्त किए गए दिल्ली के पूर्व सूबेदार नजीबुद्दौला ने अंतिम सांस ली थी, उसे दफनाया भी यहीं गया था। रोहिल्ले पठान मुसलमानों का यही सबसे मजबूत गढ़ भी था जिसे नजीबुद्दौला के जीवित रहते दिल्ली के बाद सियासी काम-काज के लिहाज बहुत ही महत्वपूर्ण मुकाम हासिल हो गया था। रोहिल्ले पठान यहीं से पूरे रोहेलखंड के इलाके पर नियंत्रण समेत हरियाणा और कश्मीर तक अपने शत्रुओं की हर फौजी गतिविधि पर नजर रखते थे।

जाबिता खान के खिलाफ मुगल रणभेरी बज गई तो सल्तनत के वजीर नज़फ खान के साथ महादजी सिंधिया ने भी पत्थरगढ़ की घेरेबंदी के लिए हामी भर दी क्योंकि महादजी को यह संदेश प्राप्त हुआ कि पानीपत के रण के बाद लापता हुई मराठा महिलाओं में ज्यादातर जीवित हैं और जाबिता खान के कब्जे में नजीबाबाद के पत्थरगढ़ दुर्ग में ही कैद हैं। फिर क्या था, मराठों के जिस दुर्दमनीय शक्ति के भय से रोहिल्ला सरदार जाबिता खान दिल्ली छोड़कर गंगा के पार भाग गया था, उसे उसकी मांद में ही जाकर महादजी शिंदे और नज़फ खान ने घेर लिया। किले की रसद आपूर्ति ठप्प हो गई और बाहर से हो रही जलापूर्ति भी बाधित हो गई। कई दिनों तक अपने किले के नीचे सागर की तरह लहराती मुगल-मराठा संयुक्त सेनाओं को देखकर जाबिता खान के होश फाख्ता हो गए। उसने संभावित पराजय और उसके बाद क्रूरतापूर्ण मौत के भय से चुपचाप एक रात गुप्त दरवाजे से पत्थरगढ़ का किला छोड़ दिया और हिमालय के तराई इलाके के जंगलों में किसी गोपनीय ठिकाने पर जाकर छुप गया।

नजीबाबाद की लूट

इधर मुगल-मराठा संयुक्त सेनाओं ने आखिरकार नजीबाबाद के अभेद्य किले का भेदन कर ही डाला और फिर जो हुआ, उसने रोहिले सरदारों के परखच्चे उड़ा दिए। किले के भीतर से करोड़ों की रकम मराठों को हासिल हुई, अधिकांश मराठा महिलाएं जो पानीपत के रण के बाद रोहिलों की कैद में दासी रूप में अपना सबकुछ गंवाकर अंतिम सांसे गिन रही थीं, सबको आजादी की हवा में सांस मिली। मराठों ने इसके बाद किले के कोषागार को हाथ में लिया और सारी दौलत बटोरकर वहां से बाहर निकल गए लेकिन मुगल सेना को इतने से संतोष नहीं हुआ।

इतिहास के कुछ स्रोतों विशेषकर मराठों की ओर से पेशवा को भेजी गई उस अभियान की रिपोर्ट में नजीबाबाद के ध्वंस का ब्यौरा मिलता है। नज़फ खान के निर्देश पर पूरे किले को मुगल योद्धाओं ने ध्वस्त कर डाला, यहां तक कि नजीबुद्दौला की कब्रगाह की ईंट से ईंट तक उखाड़ डाली। किले के सारे भीतरी हिस्से किसी गड़ी दौलत के लालच में खोद डाले गए और सैनिकों ने किले के भीतर पनाह लिए किसी भी सेठ-साहूकार, दौलतमंद, हुनरमंद स्त्री-पुरुष किसी को भी नहीं छोड़ा। किले से जो लोग बाहर सुरक्षित निकले तो किसी के शरीर पर वस्त्र भी नहीं थे, गहने-गीठे-हार-अंगुठी आदि का तो सवाल ही नहीं था। आस-पास के सारे गांव और बस्ती को मुगल सेना ने उजाड़खंड में तब्दील कर दिया। और सबसे ज्यादा विडंबना तो जाबिता खान के हरम में मौजूद उसकी दर्जनों बेगमों, बेटियों, सेविकाओं और उसके सगे संबंधियों की हुई।

इन्हीं बंदियों में जाबिता खान का एक मासूम बेटा कादर खान भी था जिसकी उम्र महज 6-7 साल के करीब थी। दिसंबर 1772 में नजीबाबाद के किले में कत्लेआम के बाद वहां की बेशुमार दौलत लूटकर मुगल सेना सारे बंदियों के साथ दिल्ली लौट आई।

मराठों और मुगल सेना में विवाद

नजीबाबाद के दुर्ग में जो लूट हुई उसकी रकम को लेकर मराठों और मुगलों में विवाद हो गया। नजफ खान ने बादशाह को रिपोर्ट दी कि सारी दौलत मराठों ने छीन ली है और मुगलों के पास लूट के लिहाज से कुछ ज्यादा हासिल नहीं हुआ है। दूसरी ओर महादजी सिंधिया ने किले से मिली डेढ़ करोड़ की रकम का हिसाब बादशाह के सम्मुख पाई पाई रख दिया जिसमें 75000 से अधिक योद्धाओं वाली मराठा सेना के वर्ष भर के रसद, भोजन, वेतन आदि का खर्च, और बादशाह की ओर से लालकिले के विजय-अभियान के एवज में 40 लाख की रकम पेशगी देने की तय देनदारी को भी शामिल कर लिया। बादशाह के सामने सारा हिसाब-किताब रखने के बाद डेढ़ करोड़ की रकम में से 2 लाख की रकम बची जिसे महादजी सिंधिया ने उसी वक्त बादशाह को सौंपकर आइंदा किसी सैन्य अभियान में मुगल सेना के साथ संयुक्त रूप से शामिल होने से हाथ जोड़ लिए। महादजी सिंधिया को गंभीर आपत्ति इस बात को लेकर थी कि जाबिता खान के किले में मुगल सिपहसालारों ने निरपराधों की हत्या और शाही परिवार और उनकी सेविकाओं के साथ दुष्कर्म के जो कृत्य किए, ये मराठा स्वराज्य के स्थापित सिद्धांतों और मूल्यों के खिलाफ थे और उनसे बगैर पूछे और भरोसे में लिए ही किले की लूट को एकतरफा अंजाम दिया गया।

मालामाल हुए मुगल

जाहिर तौर पर नज़फ खान ने मराठों के खिलाफ बादशाह के कान भरने शुरु कर दिए थे क्योंकि उसे नजीबाबाद के किले से इतनी बड़ी रकम समेत हथियार तलवारें, भाले-बरछी आदि और आधुनिक बंदूक-असलहे आदि सैन्य सामग्री हासिल हुई थी जितने में वह मराठों की सहायता के बगैर दोबारा मराठों के बराबर ताकत से सम्पन्न मुगल सेना कुछ ही महीनों में खड़ी कर लेता।

लूट की रकम का अंदाजा इसी बात से लग सकता है कि नजीबुद्दौला और उसके बेटे जाबिता खान ने अब्दाली के कंधार लौट जाने के बाद भी अवसर का लाभ लेकर लूट-पाट का अभियान बंद नहीं किया और दिल्ली के हर घर, गली, मोहल्ले को बेरहमी से राख के ढेर में बदल दिया था। किसी के दीन, ईमान, धर्म का कोई मतलब नहीं बचा था, मतलब था तो यही था कि दौलत जिसके पास भी हो, जहां भी हो, उसे वहां से लूट लो। चांदनी चौक, दरिया गंज से लेकर आस-पास का शायद ही कोई कोना-कतरा बचा था जहां का सबकुछ दोनों बाप-बेटों ने आम लोगों तक से छीन न लिया था।

एक आकलन के मुताबिक, अकेले दिल्ली में मुगलों के खजाने, व्यापारिक ठिकानों आदि की लूट से ही रोहिल्ले सरदार ने अपने पूरे कार्यकाल में 195 मिलियन पौंड कीमत की रकम जुटा ली थी, जो आज की कीमत के हिसाब से बीस हजार करोड़ रुपये से कम न थी। नजीबाबाद की जंग में जाबिता खान के किले से सारी दौलत नजफ खान और उसकी सैन्य टुकड़ी ने कई हफ्तों तक रहकर बीन डाली, कितनी दौलत नजफ खान के हाथ लगी, इसका उस वक्त अंदाजा भी नजफ खान को नहीं था। मुगल खजांचियों और लेखाकारों ने पूरी रकम को तब इसलिए भी प्रकाश में नहीं आने दिया क्योंकि मराठों की नजर पड़ते ही सारी दौलत दिल्ली की बजाए पुणे स्थानांतरित हो सकती थी।

मुगलों को मराठों से मिली मुक्ति!

इतनी बड़ी दौलत पाते ही मुगलिया सल्तनत के वजीर नजफ खान और उसकी सैन्य टुकड़ी के हौसले बुलंद हो गए थे। जिस मराठा सैन्य शक्ति के तावदार सरदारों के सामने छोटे-मोटे मुगल सरदार सदा ही खामोश खड़े दिखाई देते थे, दिल्ली वापसी के बाद उनमें बात-बात पर कहासुनी होने लगी। दोनों सैनिक टुकड़ियों में विवाद सतह पर भी आने लगा। दरबार में रोज इस तरह की शिकायतें पहुंचने लगीं। महादजी सिंधिया ने पहले तो इस पर उतना ध्यान नहीं दिया लेकिन जैसे ही वजीर नजफ खान ने मुगल सेना का पुनर्गठन शुरु किया और जोर-शोर से पलटन की भर्ती होने लगी। जाबिता खान के पराभव के बाद रोहिल्ले पठानों की एक सैन्य टुकड़ी मुगलों की शरण में चली आई। जहां जहां नवाबों का ब्रिटिश फौज ने पराभव कर दिया था, वहां के बेरोजगार सैनिक भी नौकरी के लिए दिल्ली पहुंचने लगे, इस प्रकार नज़फ खान को मुगल फौज के पुनर्गठन का बड़ा अवसर नजीबाबाद की लूट से मिली रकम ने दे दिया। इस बीच हिसार और हांसी के सभी किलों को नजफ खान ने अपने नियंत्रण में लेकर वहां से भी जबर्दस्त लूट में खाली खजाना भरना शुरु कर दिया। अब मुगल सेना किसी भी हालत में कमजोर सेना नहीं थी क्योंकि नजफ खान ने सैन्य संचालन की अपनी सारी महारत का

महादजी सिंधिया को गंभीर आपत्ति इस बात को लेकर थी कि जाबिता खान के किले में मुगल सिपहसालारों ने निरपराधों की हत्या और शाही परिवार और उनकी सेविकाओं के साथ दुष्कर्म के जो कृत्य किए, ये मराठा स्वराज्य के स्थापित सिद्धांतों और मूल्यों के खिलाफ थे और उनसे बगैर पूछे और भरोसे में लिए ही किले की लूट को एकतरफा अंजाम दिया गया।

तरीके से इस्तेमाल शुरु कर दिया था।

जाहिर तौर पर मुगलों की इस बढ़ती ताकत ने मराठा खेमे में बेचैनी पैदा कर दी। महादजी सिंधिया के कान खड़े हो गए। महादजी ने बादशाह के सामने इस बात की शिकायत भेजी कि यह सारी बातें मुगल-मराठा संधि के खिलाफ हैं क्योंकि वह खुद इतनी विशाल सेना लेकर मुगल बादशाह की खिदमत में दिल्ली में हैं, जिसके ऊपर आ रहा खर्च भी मुगलिया खजाने से ही चुकाना पहले से तय है तो फिर अलग से मुगल सेना की तादाद बढ़ाने की क्या जरुरत है? इससे संदेह पैदा होता है। महादजी द्वारा बार-बार पूछे जाने पर भी उन्हें दरबार से कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला। इन सवालों पर बादशाह और नज़फ खान की खामोशी महादजी को चिंता में डाल रही थी। उनके सामने दो ही रास्ते थे कि वह अब भी संधि के वचन का पालन करें या संधि तोड़कर लालकिले की बागडोर मराठा स्वराज्य के अधीन करने की घोषणा कर दें।

दूसरी ओर ब्रिटिश शक्ति भी लगातार अपने पैर पसार रही थी, समय का पहिया तेजी से भारत की संपूर्ण राजनीतिक बिसात पर अंधेरे की चादर बिछाता बढ़ता चला जा रहा था। समय की इसी चाल पर बाजी अचानक मराठों के हाथ से निकल गई, मराठे जिस वक्त की प्रतीक्षा 1761 में कर रहे थे, उसी वक्त ने ठीक 11 साल बाद उनके पाले में हिन्दुस्तान के राजनीतिक भविष्य की गेंद फेंक दी थी लेकिन इस अवसर को भी मराठों ने किसी भी कारण से शायद पहचान पाने में इतनी देर कर दी कि अचानक सबकुछ उलट गया। इसके पहले कि महादजी शिंदे कुछ फैसला ले पाते और नजफ खान की कुटिल चालों का जवाब देते कि पुणे में घटित भयानक राजनीतिक घटनाक्रम ने केसरिया राजनीति का परचम दिल्ली की बजाए दक्कन में ही सिमटा दिया।

30 अगस्त 1773 के दिन अत्यंत युवा पेशवा नारायण राव विरोधियों की साजिश की शिकार हो गए। दिनदहाड़े उनकी हत्या कर दी गई। पेशवा नारायण राव के चाचा रघुनाथ राव ने पेशवाई का ताज छीनकर चली आ रही रवायत के खिलाफ बगावत का ऐलान कर दिया था जिसमें उन्हें निजामशाही का पूरा समर्थन हासिल था।

पेशवा की नृशंस हत्या

30 अगस्त 1773 के दिन अत्यंत युवा पेशवा नारायण राव विरोधियों की साजिश का शिकार हो गए। दिनदहाड़े उनकी हत्या कर दी गई। पेशवा नारायण राव के चाचा रघुनाथ राव ने पेशवाई का ताज छीनकर चली आ रही रवायत के खिलाफ बगावत का ऐलान कर दिया था जिसमें उन्हें निजामशाही का पूरा समर्थन हासिल था। मराठों में अब पेशवा के उत्तराधिकार को लेकर विकट विवाद खड़ा हो गया। इस बदली परिस्थिति में महादजी शिंदे को दल-बल समेत पुणे पहुंचने का हुक्म आ गया क्योंकि महादजी शिंदे के प्रतिद्वंदियों ने पुणे में कमर कस ली थी। इस गंभीर परिस्थिति में महादजी ने दिल्ली को दिल्ली के हाल पर छोड़ते हुए भरे मन से बादशाह शाह आलम द्वितीय से विदाई की अनुमति मांगी और अपने संपूर्ण लाव-लश्कर समेत पुणे की ओर चल पड़े।

साफ तौर पर अब मुगलिया सल्तनत पूरी तौर पर आजाद थी, मराठों के रोज-रोज के निर्देश पर नाच रहे बादशाह के सारे कारकून तंग आ चुके थे, उन्हें बड़ी राहत मिली। मराठों की गैरमौजूदगी में बादशाह शाह आलम-द्वितीय और उनके वजीर मिर्जा नजफ खान ने नए सिरे से दिल्ली का सूरते-हाल बदलना शुरु कर दिया।

भाग तीन: लालकिले का खूनी मंजर

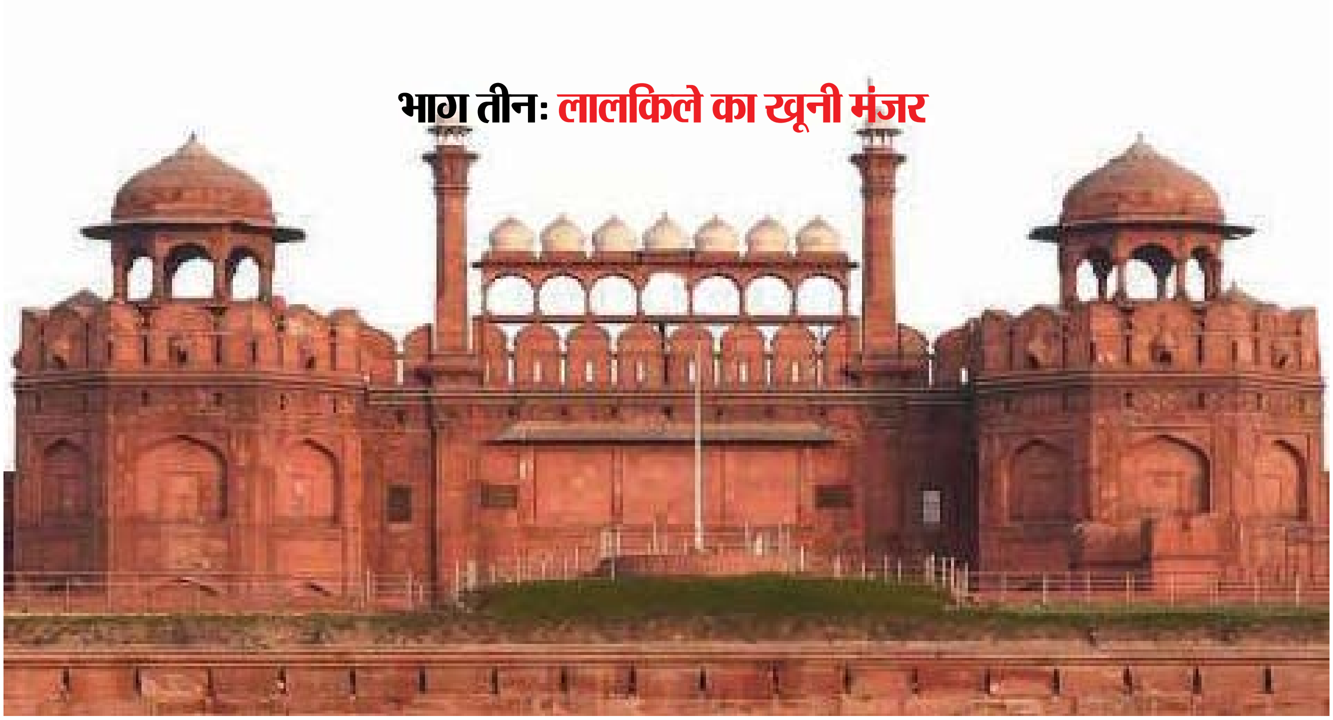

अप्रैल, 1772, लालकिला, दिल्ली। नजीबाबाद से जाबिता खान के तमाम बेटे-बेटियों, बेगमों को गिरफ्त में लेकर मिर्जा नजफ खान जब शाही दरबार में शाह आलम के सामने पहुंचा तो जाबिता खान के दुश्मन तमाम मुगल सरदारों की निगाहें उन सभी मासूम बच्चों, बेटियों और बेगमों पर गड़ गईं। सबने अपने-अपने तरीके से जाबिता खान का बदला उसके परिवार से निकालने के लिए तिकड़मों के पहाड़ खड़े कर दिए और एक-एक कर जाबिता खान की बेटियों, जवान बेगमों और बच्चों पर तमाम अनैतिक जुल्मों का सिलसिला शाही किले में ही शुरु हो गया। ज्यादातर ने क्रूरता का शिकार होकर दम तोड़ दिया लेकिन जो इसमें देखने में सबसे मासूम और उम्र में सबसे छोटा था, उसे जहांपनाह शाह आलम के दिल में उमड़ आए प्रेम ने कत्ल होने से बचा लिया। फरार जाबिता खान के उस नन्हें मासूम का नाम कादिर खान था, जो बाद में इतिहास में गुलाम कादिर खान के रूप में कुख्यात हुआ जिसकी क्रूरता के सामने क्रूरता तक शर्मसार हो गई।

लालकिले में मां-बाप को खोजता एक मासूम

कादिर खान को कुछ दिन तो शाह आलम ने सुरक्षा के लिहाज से अपनी बेगमों के हरम में ही रखवा दिया लेकिन अपनी मां और बहनों को ढूंढती उस मासूम की नन्हीं आंखें रो-रो कर हरम में शाह आलम की बेगमों और बच्चों के सामने परेशानियों का जंजाल पैदा करने लगीं। शाह आलम के 27 बच्चों में जो बिल्कुल छोटे थे, वो उस बच्चे के साथ मनबहलाव करते लेकिन बाकी जो समझदारी की उम्र में दाखिल हो चुके थे, और जो बेगमें थीं, उनके लिए तो कादिर खां का किले के शाही बंदोबस्त में आकर रहना मानो आस्तीन में सांप का आकर छुप जाने जैसा भयावह था। वो सभी उस बच्चे को ज्यादा दिन तक आंखों के सामने बर्दाश्त नहीं कर सकीं। हर किसी को उसकी आंखों में मौत बरसती ही दिखाई देती थी, इसीलिए वह कई दिनों तक भूखा-प्यासा हरम के किसी कोने में पड़ा रहता था तो भी कोई उसके पास नहीं जाता था। वह अपनी मां को आवाज दे देकर रोता था, चिल्लाता था, बहनों को यादकर बार-बार चीख-पुकार मचाता था तो हरम की दासियां ही उसे जबरन चुपकर कुछ खाने को देकर दूसरे एकांत अंधेरे कमरे में ढकेल देती थीं जहां से उसे यमुना की धारा, चिड़ियों के चहचहाने के सिवाय कुछ भी सुनाई नहीं देता था। वह खौफज़दा होकर चिल्लाता, रोता-दहाड़ें मारता लेकिन सुनने वाला वहां कौन था, इसलिए रोते-रोते निढाल होकर या तो सो जाता था या फिर आंखों के आंसू सूख जाते थे और वह किले की छतों को देखता-घूरता अपने नाखूनों से ही दीवालों को खोदता रहता या फिर खुरेंच खुरेंचकर अपने भाई-बहनों के अक्स जैसे रेखाचित्र बनाता। बेगमों ने एक दिन बादशाह से सांप का संपोला लगने वाले उस मासूम को फौरन किसी दूसरी कैद में डाल देने का अनुरोध किया तो बादशाह ने भी उस मासूम को हरम से हटाकर अपने शाही निवास में जगह दे दी।

लेकिन मामला इतने पर ही खत्म नहीं हुआ था। दरबार में कई सरदार जिनके परिवार को जाबिता खान ने तड़पा तड़पाकर खत्म किया था, उन सभी की सुबह शाम एक ही रट रहती थी कि बादशाह किसी तरह उस बच्चे को उनके हवाले कर दें ताकि उसके जरिए उसके बाप जाबिता खान को गिरफ्त में लिया जा सके और अगर जाबिता खान इसे छुड़ाने न आए तो बोटी बोटी नोचकर गिद्धों को खिलाकर या संपोले के फन की माफिक उसे कूंच कूंच कर कलेजे की आग सदा के लिए ठंडी की जा सके।

संपोले बड़े होकर सांप ही बनेंगे!

जाहिर तौर पर शाह आलम के लिए मुश्किल घड़ी थी लेकिन वह किसी कीमत पर जाबिता खान के बेटे कादिर खान को अपने से अलग करने को राजी नहीं हुए। इतिहास स्त्रोतों के मुताबिक, उन्होंने

यह कहकर कादर खान का बार-बार बचाव किया कि 'सियासी मामले में इस मासूम बच्चे का क्या कुसूर है। इसके पिता की करनी की सजा इसे नहीं दी जा सकती।'

लेकिन मंजे हुए दरबारी बातों ही बातों में यह कहने से नहीं हिचकते कि सांप की बच्चा सदा सांप ही निकलता है, जहांपनाह घर में अजगर के बच्चे को गले में डालकर घूमने की गलती न करें। यह न भूलें कि इसकी रगों में मुगलिया सल्तनत के जानी दुश्मन रोहिले सरदार नजीबुद्दौला का रक्त दौड़ रहा है जिसके आते ही समूचे मुगल खानदान को दिल्ली से बोरिया बिस्तर बांधना पड़ गया था। आखिर में बड़ा होकर ये भी तो अपने बाबा नजीबुद्दौला और अपने जीवित बाप फरार जाबिता खान का वारिस ही बनेगा। मुगलों के सारे शत्रु तब इसके इर्द-गिर्द होकर मुगलिया सल्तनत की जड़ें सदा के लिए खोद डालेंगे।

सियासत की बिसात पर शाह आलम से राजनीति के उस कड़वे सच को दरबारी कह रहे थे, जिसकी अनदेखी राजनीतिक दृष्टिकोण से वस्तुतः नहीं की जा सकती थी। फिर भी शाह आलम ने दरबारियों और राजनीति के तमाम फलसफों-किन्तु-परंतु को अनसुनाकर कादर खां को मारे जाने से बचा ही लिया। उनकी शुरुआती सोच थी कि इस बच्चे को जरिया बनाकर शायद जाबिता खान को वह काबू कर लेंगे लेकिन जाबिता खान कम शातिर नहीं था, बच्चों की मासूमियत वाली भावना जाने कब जाबिता खान के दिल में दम तोड़ चुकी थी, उसे तो अपनी ही सुरक्षा की फिक्र थी। इधर महीने दर महीने व्यतीत होने लगे और कड़ी सुरक्षा में कादिर खान बादशाह के निजी शाही निवास में कुछ बेहद करीबी किन्नरों की देख-रेख में पलने लगा।

गुलाम कादिर या किन्नर कादिर?

साल 1772 में जब कादिर खान बादशाह की शरण में आया तो उसकी उम्र 6 या 7 साल थी और देखते ही देखते उसकी आंखों के सारे आंसू सूख गए और वह किन्नरों के साथ को और उनके रहन-सहन को ही अपनी दुनिया समझने लगा। गाहे-बगाहे बादशाह ही ऐसे शख्स थे जो उसे दुलार करते नहीं तो बाकी लालकिले के पूरे महल के हर बाशिंदे के लिए वह संपोले से ज्यादा अहमियत नहीं रखता था। यह बात कादर खान भी बखूबी समझता था कि वह कौन है और इस लालकिले में उसे क्यों रखा गया है। उसे अहसास था कि वह शाही कैद में है और बादशाह की सीधी निगरानी में है। उसे यह भी मालूम था कि उसके वालिद जाबिता खान और उसके बाबा नजीबुद्दौला कभी इसी लालकिले से दिल्ली की सूबेदारी संभाल रहे थे, तरुणाई की दहलीज तक पहुंचते पहुंचते कादर खान को इन सारी बातों का अहसास हो चला था।

जब कादर खान बड़ा हो गया, यानी उसने किशोर उम्र में कदम रख दिए तो बादशाह ने उसे दिल्ली में शाहजहानाबाद में लाल किले से दूर कुदेशिया बाग के शाही महल में रहने का बंदोबस्त कर दिया। वह अक्सर अपने माता-पिता,भाई-बहनों को लेकर बादशाह से सवाल पूछता था लेकिन खामोशी या झूठ बोलने के सिवाय शाह आलम के पास कोई जवाब नहीं था। हालांकि कादिर खान से वह कोई खतरा इसलिए नहीं समझते थे क्योंकि वह उसे किन्नर बना चुके थे। वह किन्नरों की छाया में किन्नरों के रहन-सहन और तरीकों के साथ ही बड़ा किया गया था। उस जमाने के कई दस्तावेजों में इस बात का जिक्र भी आता है कि बादशाह ने उसे पाला-पोसा जरुर था लेकिन युवावस्था की दहलीज पर कदम रखने के एन पहले ही उसे बेहोशकर उसे बधिया कर देने की प्रक्रिया पूरी कर दी गई थी। मतलब साफ था कि एक प्रकार से उसे किन्नर ही बना दिया गया था ताकि उसके भीतर की संभावित सैनिक वृत्ति पनपने से पहले ही सदा के लिए खत्म की जा सके और बादशाह की सुरक्षा को किसी प्रकार का खतरा भी पैदा ना हो।बादशाह की सुरक्षा वैसे हमेशा ही चाकचौबंद रहती थी जिसमें उनका अंदुरुनी सुरक्षा घेरा तीर-कमान, भाले और अन्य आधुनिक हथियारों से लैस अफ्रीकी व अन्य लड़ाकू प्रशिक्षित महिलाओं की टुकड़ी से जेड प्लस सिक्योरिटी के अंदाज में अभेद्य रहता था। इस महिला सुरक्षा ब्रिगेड के चारों ओर दूसरे घेरे में चुने हुए विश्वस्त सैनिक रखे जाते थे, इसके अलावा तीसरा घेरा था जिसमें वर्दीधारी किन्नर रहते थे। इसके बाद के चौथे घेरे में दूर से पूरी सुरक्षा ब्रिगेड पर नजर रखने वाले घुड़सवार और पैदल सैनिक भी रखे जाते थे। साफ तौर पर कादर खान को मालूम हो गया था कि उसकी जिन्दगी को अंधेरे में बदल देने वाला शख्स कोई और नहीं बल्कि शाह आलम और लालकिले की सियासत ही है, वह इससे छुटकारे के उपाय खोजने लगा।

नज़फ खान न होता तो क्या होता?

दूसरी ओर शाह आलम की सियासत में मिर्जा नज़फ खान का किरदार भी बेहद अहम था। सल्तनत की सारी कवायद अब मिर्जा नज़फ खान के ही कंधों पर आश्रित थी। अगस्त 1773 में नज़फ खान ने जाट राजा नवल सिंह के अधिकार क्षेत्र के किलों को कब्जे में लेने की मुहिम शुरु कर दी। मैदानगढ़ी को सबसे पहले उसने नियंत्रण में ले लिया। अक्टूबर 1773 आते आते नजफ खान और उसकी सुसज्जित सेना ने मथुरा, बरसाना तक के इलाके से जाट योद्धाओं को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। उसने सेना के आधुनिकीकरण के लिए कई अंग्रेज कमांडर विभिन्न् पदों पर नियुक्त किए और सैनिक साजो सामान भी अंग्रेजों की तरह ही आधुनिक बना डाला। बंदूकों के साथ अलग सैन्य टुकड़ी और साथ में बारूद की आग भड़काने और तोपों के संचालन में कुशल उस्तादी मोर्चे उसने दोबारा खड़े कर लिए। इसी के साथ पुख्ता सूचना तंत्र विकसित किया जिसके कारण समय रहते अपने विरोधियों खास तौर पर, फरार रोहिल्ला जाबिता खान को जाट-गूजर गठबंधन में शामिल होने का अवसर ही नहीं मिल सका। सियासत की हर चाल में शातिर नजफ खान जाबिता खान के पिता नजीबुद्दौला और जाटों के युद्ध में जाट योद्धाओं के द्वारा दिखाए गए शौर्य और युद्ध कौशल

का भी पूरा हिसाब बखूबी जानता था, जिसमें नजीबुद्दौला को जाटों ने झटके पर झटके दिए थे।

एक के बाद एक दिल्ली के इर्द-गिर्द के सारे किले मुगलिया सल्तनत के झंडे के नीचे आ गए तो इसमें नजफ खान का दुःसाहस और परिश्रम ही कारण था। हिसार और हांसी के बाद वल्लभगढ़ और सबसे अहम आगरा और दीघ (भरतपुर) के किलों पर कब्जे की जंग में मुगलिया सेनाओं ने जाट और गूजरों की संगठित राजनीतिक शक्ति में विभाजनकारी कूटनीति का इस्तेमालकर सियासत में ईस्ट इंडिया कंपनी को भी जैसे मात कर दिया था। अधिकांश जाट और गूजर जंगजू संगठित रहने के बजाए युद्ध के बाद की सियासत में मुझे क्या मिलेगा और उसे क्या मिलेगा, इस सवाल पर जंग के मैदान के पहले ही अलग-अलग हो जाते थे, जिसका नज़फ खान ने अपने अंग्रेज सलाहकारों के साथ मिलकर खूब फायदा उठाया।

निश्चित रूप से नज़फ खान की तीक्ष्ण दृष्टि, युद्ध कुशलता, कूटनीतिक बुद्धि और चढ़ाई के लिए उचित समय चुनने की उसकी रणनीति ने उसे बेहद कम समय में ही असीमित ऊंचाई पर ला खड़ा किया। किन्तु इन सबके बीच सत्ता के मद में उसने वो सभी गलतियां दोहरानी शुरु कर दीं जिनके कारण मुगलिया सल्तनत समूचे भारत में भारी अलोकप्रियता और पतन का शिकार हुई थी। युद्ध में दौलत बटोरने तक ही मुगल सीमित रहते तो ठीक था, किन्तु नज़फ खान के योद्धाओं ने हर किले की जीत में अनैतिकता की वो सारी हदें पार कीं, जिनके लिए मराठा नायक महादजी सिंधिया ने मुगल बादशाह को सावधान किया था। क्रूरता, अत्याचार, हत्या और महिलाओं से बलात्कार और निर्दोष जनता पर अत्याचार, ग्रामों और कस्बों में लूट-पाट आदि जैसे जघन्य कार्यों के कारण शीघ्र ही नजफ खान भी औरंगजेब की माफिक ही शाह आलम द्वितीय की सल्तनत को दांव पर लगा बैठा।

1774 में आगरा के किले की घेरेबंदी और 1776 में दीघ(भरतपुर) के किले की घेरेबंदी में मुगलों ने क्रूरता और अत्याचार की सारी हदें पार कर दीं। दीघ के किले को नज़फ खान ने पूरे छः महीने तक घेरकर रखा। जाट महाराजा नवल सिंह ने गुप्त रीति से किले को छोड़कर अपनी जान तो बचा ली लेकिन परिवार की सुरक्षा नहीं कर पाए। मुगल योद्धा उन्हे पकड़ पाने में नाकाम हो गए तो इसका गुस्सा किले में मौजूद निरपराध जनता, सैकड़ों महिलाओं और बच्चों पर उतारा गया। क्रूरता, बलात्कार की सीमाएं लांघते हुए छोटे-छोटे बच्चों के सर तक कलम कर दिए गए।

क्रूरता के मुगालते में फंसे मुगल!

नज़फ खान ने क्रूरता में जैसे औरंगजेब को भी मात करना शुरु कर दिया था। लगातार एक के बाद एक किलों पर मिली विजय के मद में वह मदांध वजीर के रूप में शाह आलम के फरमानों की नाफरमानी करते हुए जुल्म ढाने लगा। मराठा गुप्तचरों ने सारा विवरण जस का तस पुणे भेजा तो वहां मौजूद मराठा योद्धाओं की भुजाएं फड़क उठीं। पुणे में मौजूद महादजी सिंधिया और मराठे सरपरस्तों ने शाह आलम-द्वितीय को इस सैन्य क्रूरता के एवज में अंजाम भुगतने की चेतावनी भेजी।

दूसरी ओर शाह आलम का दरबारी आलम ये था कि वह दिन-रात शेरो-शायरी, शराब-कबाब, नृत्य-संगीत आदि के चक्कर में पड़कर यह भी भूल गया कि उसके आदेश के पीछे नज़फ खान ने आम लोगों और विजित राजाओं के परिवारों, महिलाओं और बच्चों पर कितना जुल्म ढाया हुआ है। इस बीच जैसे ही मित्रवत रहते आए मराठों का कठोर संदेश शाह आलम के दरबार में पहुंचा तो बादशाह की पेशानी पर बल पड़ गए। उसने फौरन नज़फ खान को सख्त संदेश भिजवाकर रिपोर्ट तलब कर ली। संदेश में शाह आलम ने कहा कि-तुम्हें राज्य की देखभाल करने,सल्तनत को सुदढ़ करने के लिए वजीर बनाया गया है न कि आम लोगों पर क्रूरता बरपाने और निर्दोषों का रक्तपात करने के लिए। तुमने मेरे राज्य में लूट-पाट और अत्याचार की सारी हदें पार कर दी हैं। इसे फौरन बंद करो और दोबारा ऐसी हरकत की तो परिणाम ठीक नहीं होंगे।

दरअसल, शाह आलम को औरंगजेब के समय के तमाम अनुभवों की पूरी जानकारी थी जिसमें पंजाब में सिखों और राजस्थान में राजपूतों से टकराव मोल लेकर मुगलिया सल्तनत ने अपनी बुनियाद ही जड़ से हिला डाली थी। जाहिर तौर पर शाह आलम मराठों से किसी प्रकार की शत्रुता मोल लेने की स्थिति में नहीं था, हालांकि उसके सबसे बड़े योद्धा और वजीर नजफ खान की जंगजू प्रवृत्ति लगातार इस बात का दबाव बना रही थी कि मराठों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, यही मौका है कि दिल्ली को केंद्र बनाकर मुगल सल्तनत को मजबूती से चारों ओर मजबूत कर दिया जाए।

नज़फ खान ने दबा ली दौलत?

दूसरी ओर शाह आलम के दरबार में नज़फ खान की तानाशाह कार्यशैली से कई दूसरे दरबारियों में भी दूसरी सुगबुगाहट चल रही थी। अब्दुल अहद खान नाम का एक दरबारी जो शाह आलम के बेहद करीब था, उसने शाह आलम को यह समझाने में सफलता हासिल कर ली कि नज़फ खान बादशाह के आदेशों पर अक्षरशः अमल नहीं करता है, वह शत्रु किले लूटकर हासिल रकम और दौलत पूरे हिसाब के साथ खजाने में जमा नहीं करता है, हर युद्ध का पूरा खर्च वह खजाने से उठाता है लेकिन खजाने में उस हिसाब से राजस्व वापसी नहीं कर रहा है, यही कारण है कि साम्राज्य की ताकत बढ़ने पर भी शाही खजाना खाली है जबकि नजफ खान के अपने सगे-संबंधियों, भाईयों और रिश्तेदारों की माली हालत नवाबों से बढ़कर होती जा रही है।

अब्दुल अहद खान और दूसरे दरबारियो ने यह रिपोर्ट भी बादशाह के कानों तक पहुंचाई कि नज़फ खान किसी भी समय लालकिले पर कब्जाकर उन्हें सिंहासन से हटाकर कैदखाने में डाल सकता

है क्योंकि गुप्तचरों ने खबर दी है कि वह योजनाबद्ध ढंग से अपनी बढ़ती सैनिक ताकत के बूते नवाब शुजाउद्दौला के साथ मिलकर उन्हें सिंहासन से हटाने की साजिश भी रच रहा है। शाह आलम के लिए आसन्न खतरे को समझने में मुश्किल नहीं थी क्योंकि इस बात में सच्चाई थी कि शाही सल्तनत के सारे बड़े राजस्व स्त्रोतों पर नजफ खान कुंडली मारकर बैठ गया था, वहीं दूसरी ओर बादशाह को ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से सालाना 26 लाख की रकम मिलने की जो संधि तय हुई थी, उसमें से एक फूटी कौड़ी भी बीते कई साल से कंपनी ने बादशाह को भेंट नहीं की क्योंकि वॉरेन हेस्टिंग्स का आकलन था कि जबतक बादशाह मराठों के संपर्क में है, उसे कहीं से भी मजबूत करना खतरे से खाली नहीं।

सारी उम्मीदें हुईं धराशायी

जाहिर तौर पर बादशाह की ऐय्याशियों और नज़फ खान और उसके करीबियों की शाही खजाने पर लगी गिद्ध निगाहों ने बादशाहत को भीतर ही भीतर खोखला करना शुरु कर दिया था। बादशाह के सामने अक्सर सेना और दूसरे तमाम कर्मचारियों को मासिक पगार देने तक का बंदोबस्त नहीं रहता था। जितनी तेजी से राजस्व खजाने में भरता था, उससे कई गुना तेजी से खजाना कब और कहां खाली हो जाता था, इस हिसाब-किताब की सही तस्वीर भी बादशाह के दिमाग में नहीं रह पाती थी। इसी बीच मिर्जा नज़फ खान की सेहत अज्ञात बीमारी के कारण बिगड़ गई। नज़फ खान ने बीमारी से निजात पाने के लिए तमाम मौलवियों और चिकित्सकों का आसरा लिया लेकिन कोई फायदा नहीं। वह पहली बार 1775 में बीमार पड़ा था लेकिन इलाज के बाद फिर से मोर्चे पर लौट आया था लेकिन इस बार 1779-80 के करीब जब वह बिस्तर पर गिरा तो उसकी हालत सुधरे नहीं सुधरी। इतिहास स्त्रोतों के अनुसार, नज़फ खान विषकन्याओं का शिकार बन गया था। वह योद्धा तो जरूर जबर्दस्त था लेकिन अय्याशी में धीरे धीरे उसे बादशाह शाह आलम जैसी ही सनक सवार होने लगी थी। कहते हैं कि ऐसी ही एक मुस्लिम तवायफ के चक्कर में पड़कर वह अपनी सारी सेहत ही दांव पर लगा बैठा। कहते है कि वह तवायफ उसके सियासी दुश्मनों के इशारे पर ही उसकी जिन्दगी से बड़ा खेल कर गुज़री थी।

जब उसकी सेहत ठीक होने के सारे रास्ते बंद हो गए तो उसने पीर-पंडितों का भी आसरा लिया। तमाम बड़े बड़े वैद्य बुलाए गए। उसने दिल्ली के कालिका मंदिर मे बड़े विराट तांत्रिक हवन-यज्ञ का भी आदेश दिया और बतौर वजीर पूरी सल्तनत में गौकशी पर रोक के वो सारे फरमान फिर से लागू किए जो मराठा नायक महादजी शिंदे के आग्रह पर शाह आलम ने लागू करने के लिए निर्देशित किए थे। लेकिन कोई उपाय उसे मौत के पंजे से बचा नहीं सके। दूसरी ओर उसके जानी दुश्मन दरबारी अब्दुल अहद खान ने पटियाला में सिखों के विरुद्ध मोर्चा खोला तो उसमें उसे शर्मनाक हार का सामना करना पड़ा। खजाने को भारी नुकसान हुआ। एक ओर नज़फ खान की बीमारी तो दूसरी अहद खान की पराजय से शाह आलम का मानो राजनीतिक धरातल ही साफ हो गया। 6 अप्रैल 1782 के दिन 45 साल की उम्र में नज़फ खान ने दिल्ली में ही दम तोड़ दिया। मुगल इतिहास में उसे जुल्फिकार-उद-दौला की उपाधि मिली और सफदरजंग की कब्र के पास ही एक शानदार बगीचे में दिल्ली में उसे सुपुर्देखाक किया गया। आज का नज़फगढ़ उसी नज़फ खान के गढ़ के रुप में मुगल सत्ता का अहम केंद्र बन गया था।

झटके पर झटका

शाह आलम को तीसरा झटका तब लगा जबकि मिर्जा नज़फ खान के कोई काबिल औलाद नहीं होने के कारण उसके उत्तराधिकार और इकट्ठा की हुई लूट की बेशुमार दौलत को लेकर उसके अति निकट सरदार आफरासियाब खान और उसके भांजे मिर्जा मुहम्मद शफी में जंग छिड़ गई। 1782 के सितंबर महीने में जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर दोनों के गुर्गे एक दूसरे से भिड़ गए। शाह आलम ने दोनों गुटों में एकता की कोशिश की लेकिन सब बेकार साबित हुईं। दोनों ही आपसी भिड़ंत में सदा के लिए मटियामेट हो गए।

इतिहास स्त्रोतों के मुताबिक, नज़फ खान पर्शियन शिया मुस्लिम था। जबकि उसका अति निकट सरदार अफरासियाब खान एक हिन्दू सरदार का बेटा था। मिर्जा मुहम्मद शफी ने इसी बिन्दु पर विवाद पैदा किया कि चूंकि अफरासियाब खान शुद्ध मुसलमान नहीं है इसलिए वह नजफ खान का और मुगलिया सल्तनत के सेनापति का ओहदा संभालने के काबिल नहीं है। अफरासियाब ने इसका जवाब अपनी तलवार से ही देना तय किया कि कौन कितना काबिल है। उसने पहले मुहम्मद शफी को ही मौत के घाट उतार दिया तो बाद में शफी के समर्थक मुगल योद्धाओं ने घात लगाकर उसकी भी जीवनलीला समाप्त कर दी।

लालकिले को यमुना में बहाने का प्रण!

इस संघर्ष ने मुगलिया सल्तनत को एक बार फिर से चारों ओर से असुरक्षित कर दिया। इसी में मौका देखकर शाही कैद में रह रहा गुलाम कादर खान फरार हो गया और नजीबाबाद के आगे हिमालय के गुप्त ठिकाने में छुपे अपने पिता जाबिता खान से जा मिला। दोनों पिता-पुत्र गले लगे और फूट फूटकर रोए। कादर खान ने शाही कैद में उसके ऊपर बरपाए सारे जुल्मों, सारे भाई-बहनों, मां और चाचियों के मारे जाने की दास्तां पिता को बतायी और फिर दोनों ने ही ऐलान कर दिया कि बदला लेकर रहेंगे। शाहजहानाबाद(दिल्ली का अंदुरुनी पुराना हिस्सा) को मिट्टी में मिला देंगे, लालकिले का नामोनिशां धरती पर नहीं बचेगा, दरियाए-यमुना में किले की ईंट से ईंट बजाकर बहा देंगे। दोनों पिता-पुत्रों के साथ मुट्ठी भर बची रोहिल्ले मुसलमान योद्धाओं की उस सेना ने ही सर पर कफन बांधकर लालकिले पर धावा बोलने का अवसर खोजना शुरु कर दिया।

भाग चार : लूट, लूट और लूट

'मेरा राज्य और मेरी धनसंपदा सबकुछ लुट चुके हैं। चारों ओर नाउम्मीदी और अंधेरा है। मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है महादजी शिंदे, आओ और इस मुगल सल्तनत को संभालो।'–शाह आलम

नजफ खान के गुजर जाने के बाद बादशाह शाह आलम द्वितीय के सामने महादजी शिंदे की शरण लेने के सिवाय कोई रास्ता शेष नहीं था।

27 अप्रैल 1782

दिल्ली के जोरबाग के पास मिर्ज़ा नज़फ खान को आंसुओं के सैलाब के साथ बादशाह ने श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए मिट्टी के हवाले कर दिया। दिल्ली में आज का नजफगढ़ नजफ खान के नाम और उसके दौर की याद दिलाता है। मुगल सल्तनत को उस लड़खड़ाते समय में नज़फ की मौत ने सबसे बड़ा झटका दिया। हालांकि उसे लालकिले के शाही खजाने के खाली होने के लिए अनेक दरबारियों ने जिम्मेदार ठहराया था तो भी जब तक वह जीवित था, उसके होने के अहसास मात्र से लालकिले के परकोटे उसके सबसे बड़े जानी दुश्मन बन चुके रोहिले सरदारों से सुरक्षित थे। उसकी मौत के बाद उसके उत्तराधिकार की जंग में मुगलों की सेवा में जुटे कई योद्धा अपने-अपने अहंकार की वजह से खेत रहे। 1784 में अफरासियाब खान को आगरा किले के मुगल सूबेदार मुहम्मद बेग हमदानी के इशारे पर एक मुगल योद्धा जैनुल आबदीन ने उस समय मार डाला जबकि अफरासियाब खान मराठों के साथ सल्तनत की संधि को लेकर बादशाह के निर्देशों को लागू करने में जुटे थे। आगरा किले के सूबेदार हमदानी की निगाहें भी लालकिले पर गड़ी थीं लिहाजा उसे बादशाह का मराठों से मेलजोल बढ़ाने का प्रस्ताव रास नहीं आ रहा था। इसके पहले बादशाह के सलाहकार कश्मीरी मुसलमान अहद खान का भी पराभव हो चुका था। अहद खान दरबार में रहकर ब्रिटिश हितों का पोषक बन गया था, दरबार की हर मालूमात वह अंग्रेज अफसरों तक पहुंचा रहा था। इस बात की जानकारी जब अफरासियाब को लगी थी तो उसने बादशाह को सूचना देकर अहद खान को कैद में डलवा दिया था। सियासत के इन भितरघाती चालों ने मुगल दरबार में कोरोना वायरस की तरह हर इंसान को एक दूसरे से दूर रहने और संदेह करते रहने का आदी बना दिया था।

इस प्रकार बादशाह शाह आलम चौतरफा चुनौतियों में घिर गए थे। अब कोई भरोसेमंद, राज्य को समर्पित शख्स उनके इर्द-गिर्द था ही नहीं जो सिंहासन के प्रति वफादारी रखता और जिसका अपना कोई निजी एजेंडा नहीं होता। दरबार में चारणों की भीड़ थी जो बस एक दूसरे की शिकायतें ही बादशाह को बताकर अपना नंबर बढ़ाने में जुटीं रहतीं। किसी की आंखों में देश की तस्वीर नहीं थी कि कहां-कहां कौन से खतरे मुल्क की सुरक्षा में सेंधमारी कर रहे हैं। जब किसी देश की राजनीति और व्यवस्थाएं दो-तीन लोगों के इर्द-गिर्द ही घूमती हैं तो ऐसे में किसी एक दो के अचानक गुजर जाने से जो संकट राज्य के सम्मुख खड़ा होता है, उसी संकट ने मुगलिया सल्तनत को भी चतुर्दिक संकटों में उलझा दिया। बादशाह के चारों ओर अब केवल ऐसे दरबारियों का झुंड शेष था जिनके पास जूझने की हिम्मत नहीं थी, वो जनता में जाकर मुगल सेना को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक योग्य प्रतिभावान नई पीढ़ी को संगठित करने में जरा भी रुचि नहीं रखते थे। दरबार के हर शख्स की निगाह केवल इसी बात में थी कि किस तरीके से बादशाह के इर्द-गिर्द घूमने वाले अमीरों, धनिकों, सेठों और व्यापारियों के जरिए अधिक से अधिक खजाने को चूना लगाया जाए।

ऐसे लचर हालात में बादशाह कब तक सुरक्षित रह सकते थे। शानो-शौकत-सुख और शांति की चिड़िया लालकिले के परकोटे से उड़कर कहीं और चली गई। चारों ओर से शत्रु लालकिले के ऊपर आंख गड़ाए बैठ चुके थे। जाट-गूजर और सिख शक्तियों ने दिल्ली को चारों ओर से घेर रखा था। आए दिन मुगल योद्धा मारे जा रहे थे और उनकी इकट्ठा की गई दौलतें लूटी जा रही थीं। मुगलवंश के सारे जागीरदारों ने इस संकट की घड़ी में लालकिले से दूरी बना ली थी। मिर्जा राजा जयसिंह के जमाने से जितने राजपूत वंश सल्तनत का साथ देते आ रहे थे, उन सभी ने भी अवसर को पहचान लिया था कि दिल्ली की बादशाहत अब गए दिन की बात हुई। जाबिता खान

और गुलाम कादिर खान ने मेरठ, नजीबाबाद से लेकर बरेली और फर्रुखाबाद तक फिर से अपने क्षत्रपों को संगठित कर मुगलिया सल्तनत को सीधे ललकारना शुरु कर दिया था। सारे किलेदार स्वायत्त हो गए थे। इस प्रकार मुगल सल्तनत की साख खत्म हो गई तो खजाने में जो कुछ तमाम जागीरदारों के जरिए आ रहा था, सब बंद हो गया। खजाने को नजफ खान, अहद खान और बादशाह की खुद की अय्याशियों ने पहले ही बड़ा चूना लगा रखा था तो न साख बची और न ही खजाना, दूसरी ओर विरोधियों की ओर से मिल रही चोट दर चोट से दिल्ली वीरान।

1773 में जब महादजी सिंधिया को दिल्ली छोड़कर पुणे लौटने को मजबूर होना पड़ा तो उसके बाद वो एक के बाद एक विकट चुनौतियों में उलझते चले गए। मराठों की अंदुरुनी राजनीति में भी सत्ता को लेकर वो मार-काट शुरु हो चुकी थी जो अबतक दिल्ली या इस्लामिक राजनीति की पहचान थी। पेशवा नारायण राव की हत्या के बाद मराठा सियासत पर राघोबा ने कब्जा जमा लिया।

शहर में सड़कों पर दिन में केवल सियार और कुत्ते ही इधर से उधर मांस चिचोरते, दौड़ते-भागते दिखाई देते थे। हवेलियों की रौनकें गायब थीं। उत्सवी शामियाने और देर रात तक गाने-बजाने अब बीते दिन की बात हो गए थे। तमाम बड़े-बड़े शायरों की नज़्में गमों में खो गईं थीं। अंधेरी रातों में लालकिले के सामने चांदनी चौक से दरियागंज तक पुराने शहर में कोई मशाल से रौशनी तो दूर कोई दिया-बत्ती सुलगाने वाला भी नहीं बचा था।

अवसर का लाभ देखकर डकैतों के गिरोह के गिरोह जब चाहे तब शहर के बचे-खुचे बाशिंदों को जब मन आता तब ही लूट-पाटकर भाग चलते। जाबिता खान और कादिर खान की धमकी रह-रह कर किले में तमाम प्रकार की चर्चाओं को जन्म दे रही थी। मुगलिया सेना की हैसियत केवल इतनी ही बची थी कि लालकिले और दूसरे शाही ठिकानों को बाहरी शत्रुओं से किसी तरह बचा सकें। दिल्ली में मौजूद अंग्रेज रेजीडेंट शाह आलम के विरोधियों के साथ मिलकर अलग सियासी चालें चल रहे थे जिसमें बादशाह को आशंका हो चली थी कि किसी भी समय उसकी हत्या की जा सकती है और दिल्ली शत्रुओं के चंगुल में जा सकती है। बाहरी सुरक्षा के नाम पर शाही अस्तबल में अनूपगिरी के योद्धाओं की सेना ही बची थी लेकिन महीनों से इन्हें भी वेतन आदि के लाले पड़ गए थे। इधर वॉरेन हेस्टिंग ने एक फूटी कौड़ी देने से पहले ही इन्कार कर दिया था, ऊपर से मुगल राजस्व के दूसरे स्रोतों पर भी अंग्रेजों का शिकंजा लगातार कसता चला गया था। इस विकट परिस्थिति में शाह आलम के सामने अब सिवाय मराठों की शरण में जाने के दूजा उपाय नहीं बचा था। शाह आलम ने इस दारुण हालत में दूसरी बार त्राहि माम त्राहि माम करते हुए मराठा नायक महादजी शिंदे (सिंधिया) से गुहार लगाई। दूत के जरिए जो पैगाम पुणे में महादजी शिंदे (सिंधिया) के पास पहुंचा उसमें शाह आलम की करुण पुकार साफ झलक रही थी। लिखा था कि-

'मेरा राज्य और मेरी धनसंपदा सबकुछ लुट चुके हैं। चारों ओर नाउम्मीदी और अंधेरा है। मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है महादजी शिंदे,आओ और इस मुगल सल्तनत को संभालो।'

1773 में जब महादजी सिंधिया को दिल्ली छोड़कर पुणे लौटने को मजबूर होना पड़ा तो उसके बाद वो एक के बाद एक विकट चुनौतियों में उलझते चले गए। मराठों की अंदरुनी राजनीति में भी सत्ता को लेकर वो मार-काट शुरु हो चुकी थी जो अबतक दिल्ली या इस्लामिक राजनीति की पहचान थी। पेशवा नारायण राव की हत्या के बाद मराठा सियासत पर राघोबा ने कब्जा जमा लिया लेकिन महादजी शिंदे, नाना फड़नवीस आदि ने राघोबा को पेशवा मानने से इन्कार करते हुए मराठा क्षत्रपों की बैठक बुलाकर त्वरित कार्यवाही करते हुए नारायण राव के नवजात शिशु माधवराव द्वितीय को पेशवा घोषित कर दिया। राघोबा ने ऐसे में अंग्रेजों से हाथ मिलाकर मराठा राजनीति की पीठ में ही छुरा भोंक दिया। अंग्रेज मराठों की अंदरुनी राजनीति में कूद पड़े और इसी में पहले मराठा-अंग्रेज युद्ध की जमीन तैयार हो गई। महादजी को जब मुगल बादशाह का पत्र मिला तो वह इसी मराठा-अंग्रेज प्रथम संग्राम का पर्दा गिराकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ दिल्ली की अगुवाई में बड़े मोर्चे की तैयारी में जुट चुके थे। अंग्रेजों के साथ मराठा संग्राम का अंत महादजी शिंदे की अगुवाई में ही साल्बाई की संधि के रूप में 1782 में सामने आया। साल्बाई की संधि भारत में ब्रिटिश विस्तारवाद के विरुद्ध एक बड़ा स्पीड ब्रेकर सिद्ध हुई जिसके रणनीतिकार और नायक महादजी शिंदे थे। जब तक महादजी जीवित रहे, अंग्रेजों को साल्बाई की संधि सालती रही। इसके पहले बेहद आसानी से अंग्रेजों ने प्लासी और बक्सर के रण के जरिए बंगाल, बिहार और अवध के सूबों को अपने चंगुल में फंसा लिया था, लेकिन मराठों के सामने फौरी तौर पर अंग्रेज अपनी चला पाने में नाकाम हो गए।

नवंबर, 1784

बादशाह का आमंत्रण महादजी शिंदे को मिल चुका था। लेकिन पुणे की राजनीतिक सरजमीं की बिसात महादजी के रास्ते का रोड़ा बन गई थी। तुकोजी होल्कर और नाना फड़नवीस मुगल बादशाह की महादजी शिंदे से सीधी खतो-किताबत के खिलाफ बात करने लगे। नाना फड़नवीस ने सैद्धांतिक प्रश्न उठा दिया कि जो बात बादशाह को करनी है वह छत्रपति के प्रतिनिधि पेशवा से

करें। महादजी शिंदे पेशवा तो नहीं है। जाहिर तौर पर नाना फड़नवीस चाहते थे कि बादशाह उन्हें तवज्जो दें और महादजी उनकी इच्छा से चलें ना कि खुद की इच्छा से। इधर पेशवा माधवराव द्वितीय महज दस साल के थे और पेशवाई के सारे सूत्र नाना फड़नवीस ने अपने हाथ में रख लिए थे। किसी तरह से महादजी सिंधिया ने नानाजी को दिल्ली के राजनीतिक हालात पर नजर रखने के लिए तैयार किया। यह भी समझाया कि अगर इस समय बादशाह शाह आलम की मदद के लिए हाथ नहीं बढ़ाए गए तो मुगल सल्तनत के अंग्रेजों के नियंत्रण में जाने से सबसे बड़ा नुकसान मराठा शक्ति का ही होना तय है। ब्रिटिश विस्तारवाद के ताप से पुणे का खुशमिजाज मौसम भी तप ही रहा था। नानाजी की पारखी तीक्ष्ण राजनीतिक नज़रों में यह छुपा नहीं था कि दिल्ली में भी अंग्रेज अफसरों ने सघन डेरा डाल रखा है, कंपनी का रेजीडेंट आए दिन मनमानी करता है और अंदरुनी तौर पर वही दिल्ली की राजनीति का संचालन भी करने लगा। नानाजी ने तब दिल्ली के सत्ता सूत्र नियंत्रण में लेने के लिए महादजी की प्रार्थना को स्वीकृति प्रदान कर दी।

इधर बादशाह के दूत लगातार महादजी शिंदे को दिल्ली शीघ्र पहुंचने के लिए दबाव बना रहे थे, दूसरी ओर बादशाह की बेचैनी ये थी कि महादजी को दिल्ली न आता देखकर वह स्वयं ही महादजी को दिल्ली आने का निमंत्रण देने पुणे जाने को भी तैयार थे। हालात की गंभीरता को पहचानकर महादजी शिंदे ने मराठा सैन्य टुकड़ी के साथ दिल्ली की ओर ठीक 11 साल बाद फिर से रुख किया। महादजी की जिंदगी में इतिहास बार-बार उन्हें दिल्ली की ओर ढकेल रहा था। 1761 में जब पानीपत का तीसरा संग्राम छिड़ा था, तब महादजी शिंदे मराठा सैन्यदल के एक प्रमुख योद्धा के रूप में दिल्ली आए थे, हालांकि तब उनकी हालत केवल सदाशिव भाऊ के निर्देशों का पालन करने वाले एक आज्ञाकारी उप सैन्यपति की ही थी। पानीपत में मराठों पर टूटे कहर को उन्होंने अपनी आंखों से देखा था और करीब-करीब वह भी जमीन पर खेत रहे हजारों योद्धाओं के बीच पड़े-पड़े अंतिम सांस गिन ही रहे थे कि अचानक पानी पिलाने वाले एक भिश्ती राणा खान की नज़र उन पर पड़ गई। महादजी की सांसे चल रही थीं, पैरों और कंधे पर तलवारों के गहरे जख्म थे। रक्त उनके शरीर से रिस-रिसकर पानीपत की भूमि को मानो कोई आहुति दे रहा था। राणा खान के रूप में मानो महादेव ही भिश्ती रूप में महादजी की आंखों के सामने प्रकट हुए। अब्दाली की सेना जब जश्न मनाने में जुटी थी, राणा खान ने न केवल महादजी को जल पिलाकर उनकी टूटती सांसों को थाम लिया बल्कि कई जीवित मराठा योद्धाओं की निगहबानी में रात के अंधेरे में महादजी को अपनी पीठ पर लादकर जंग के मैदान से सुरक्षित बाहर निकाल लिया और अपनी बैलगाड़ी में जल से भरे विशाल मशकों के बीच छुपाकर रातों रात उन्हें ग्वालियर की ओर लेकर रवाना हो गया। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि राणे खान राजस्थान के एक राजपूत परिवार की प्रजा से ताल्लुक रखता था जिसने मतांतरण के बाद भी अपनी जड़ों से जुड़ी पुरखों की स्मृति छोड़ी नहीं थी और उसे पठान सेना में जलापूर्ति की जिम्मेदारी भिश्ती दल के साथ मिली हुई थी।

एक भिश्ती राणे खान ने जिस तरीके से पानीपत के तीसरे संग्राम में महादजी की जान बचाई, उसने इस मराठा महानायक को राणे खान का ताउम्र कर्जदार बना दिया। लिहाजा अब राणे खान भिश्ती नहीं थे, महादजी ने उन्हें अपनी सेना में प्रमुख सैन्य उपपति का पद देकर उनका ओहदा एक योद्धा के अनुरूप कर दिया। राणे खान अब सदा छाया की भांति महादजी शिंदे के हर अभियान में साथ जुड़ गए और आजीवन उन्होंने अपना ये रिश्ता महादजी के साथ निभाया।

पानीपत के बाद जब महादजी शिंदे ने 1771-72 में शाह आलम द्वितीय को लालकिले के सिंहासन पर दोबारा आसीन करना तय किया तो राणे खान उस समय भी उनके साथ थे। राणे खान ने उस समय महादजी को लालकिले से न हटने की सलाह भी दी लेकिन महादजी उसूलों के पक्के थे। उन्होंने दिल्ली का भाग्य बादशाह के हवाले कर वापस पुणे की ओर रुख कर लिया लेकिन दिल्ली को शायद महादजी से दूरी रास नहीं आ रही थी। 11 साल बाद महादजी शिंदे जब 1784 में शाह आलम के बुलावे पर दिल्ली की ओर पूरे दल-बल के साथ दौड़ पड़े तो उनके सामने अखंड भारत का महान शक्तिशाली चित्र तैर रहा था। नियति ने उन्हें संभवतः इसी कार्य के लिए चुना था और इसीलिए वह बार-बार दिल्ली की ओर खींचे चले आ रहे थे। बादशाह शाह आलम को जैसे ही महादजी की दिल्ली रवानगी की खबर मिली उन्होंने लाव-लश्कर के साथ फतेहपुर सीकरी के पास खानवा के गांव में पड़ाव डाल दिया ताकि अरसे बाद एकांत में भारत के राजनीतिक भविष्य पर महादजी के साथ खुलकर सारी बातें सदा के लिए तय की जा सकें।

नवंबर 1784 में खानवा के गांव की छावनी में शाह आलम ने महादजी का पुरजोर स्वागत किया। बादशाह को महादजी ने भारत के बादशाह की तरह सम्मान देने में कोई कमी नहीं की, उनको सलामी दी और फिर दोनों ने पुराने सारे गिले-शिकवे भूलकर साथ साथ भविष्य को गढ़ना तय कर लिया। शाह आलम ने बादशाह के बाद सल्तनत के सबसे बड़े पद यानी महामात्य का दायित्व फौरन महादजी के कंधों पर डालने का ऐलान करते हुए उन्हें मुल्क का वकील-ए-मुतलक या वजीरुल-मुल्क घोषित कर दिया। महादजी ने मुगल सल्तनत के वजीर के रूप में बादशाह की सलाह से पूर्ण गौहत्याबंदी और मंदिरों-तीर्थों के सम्मान का पहला आदेश पूरे मुल्क में लागू करने के निर्देश जारी किए। यह आदेश मिर्जा नजफ खान ने भी बादशाह की सलाह से पहले भी जारी किए थे लेकिन मराठों के वापस लौटने के बाद और दिल्ली में अंग्रेजों की दखल के कारण इस नियम को लागू करने में लापरवाही बरती जाने लगी थी, जिसके कारण जाट-गूजर-सिख-राजपूत आदि सभी मुगल सल्तनत को हर मोर्चे पर या तो खुले रूप से या गुपचुप मात देने में जुटे थे।

महादजी सिंधिया ने दिल्ली की कमान हाथ में जैसे ही ली, ईस्ट इंडिया कंपनी के नियामकों में हलचल मच गई। कोलकाता में गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स के दफ्तर में केवल दिल्ली के बदलते राजनीतिक हालात से निपटने के लिए रणनीति बनने लगी, इस एक खबर ने लंदन तक सारे तार झनझना दिए। कंपनी के कारिंदों ने इस एक फैसले का आकलन इस तरह से कोलकाता भेजा कि- बादशाह के इस फैसले ने हालात मुश्किल कर दिए हैं। अब गुजरात से जम्मू तक, कंधार से रोहेलखंड और लखनऊ तक, दक्कन में पुणे से उत्तर में ग्वालियर तक मराठों और सिखों की शक्ति का वर्चस्व स्थापित हो चुका है। इन दोनों शक्तियों का मिलन कंपनी राज के भविष्य के लिए अच्छा नहीं। अंग्रेजों का संदेह सही था। महादजी के सहयोगी अंबाजी ने मछेरी राजा प्रताप सिंह की अगुवाई में सिख राजाओं के साथ इस बात के लिए संधि कर ली कि दोनों के मित्र और शत्रु समान रहेंगे। जरूरत पड़ने पर दोनों एक दूसरे को सहयोग करेंगे। मुगल सल्तनत के साथ सिखों का बर्ताव अब दोस्ताना रहेगा। कंपनीके अफसरों ने फौरन हालात से निपटने की रणनीति पर काम शुरु कर दिया। गवर्नर जनरल का संकेत मिलते ही उत्तर भारत के सभी ब्रिटिश रेजीडेंट इसी काम में लगा दिए गए कि कैसे भी मुगल-मराठा-सिखमैत्री प्रभावी न होने पाए और मुगल साम्राज्य के वजीर पद से या तो महादजी को विदा किया जाए या फिर मुगल बादशाह को ही समाप्त कर दिया जाए।

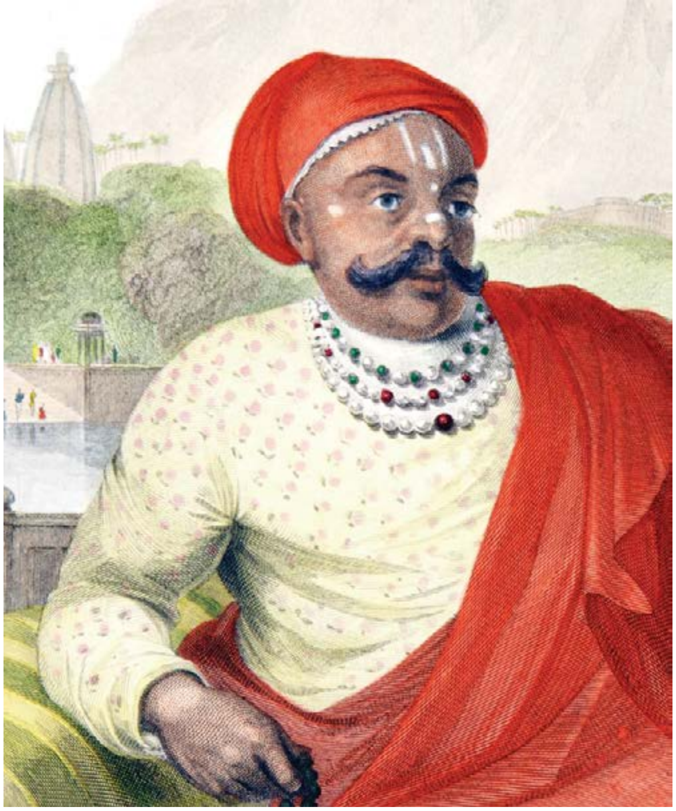

कंपनी के अफसरों ने त्रिसूत्रीय फार्मूले पर काम शुरु किया। मुगलों के जानी दुश्मन पठानों और रोहिले मुसलमान सरदारों को संपर्क में लिया गया। उन्हें लालकिले पर चढ़ाई के लिए उकसाया गया। जो सिख जागीर प्रमुख मुगलों के साथ किसी प्रकार के रिश्ते के खिलाफ थे, उन्हें महादजी सिंधिया से किसी भी प्रकार संधि न करने के लिए तैयार किया गया और सबसे अहम राजस्थान के राजपूताने में महादजी की भावी योजनाओं के खिलाफ माहौल बनाया जाने लगा। महादजी के सामने सबसे बड़ा संकट कोष को लेकर खड़ा हो गया। वजीर पद संभालते समय उन्हें इस बात का अहसास हो गया था कि मुगल सल्तनत का राजकोष खाली हो चुका है लेकिन इस बात का अंदाजा नहीं था कि इतना ज्यादा खाली हो चुका है कि उन्हें सेना के साथ एक कदम बढ़ाने में भी पसीने छूट जाएंगे। सालों हो गए थे मुगल सैनिकों को वेतन ही नहीं मिला था, सवाल ये था कि मराठा सैनिकों को वेतन आदि का बंदोबस्त कहां से होगा जबकि पुणे में पेशवा के सूत्रधार नाना फड़नवीस भी एक फूटी पाई भी मुगल सल्तनत के वजीर बन चुके महादजी शिंदे को देने के लिए राजी नहीं थे।

एक ही रास्ता था कि महादजी ने मुगल सल्तनत की जागीर संभाल रहे सभी राजाओं और नवाबों को बादशाह का संदेश भिजवा दिया कि वर्षों से जो मालगुजारी और टैक्स उन्होंने खजाने में नहीं जमा किया है, उसे फौरन खजाने में जमा करें नहीं तो कार्रवाई के लिए तैयार रहें। जनवरी 1786 में बादशाह और महादजी दोनों ने राजपूताने की ओर प्रस्थान किया। जयपुर के राजे ने बकाया वसूली के इस प्रयास को अपने आत्म सम्मान के विरुद्ध बताकर दूसरे राजपूत घरानों से मशविरा प्रारंभ किया। मारवाड़के राजा ने जयपुर के राजा के कथनानुसार जैसे को तैसा के लिहाज से युद्ध के मैदान में उतरने का भी ऐलान कर दिया। मुगल दस्तावेजों के मुताबिक, जयपुर के राजघराने के ऊपर 3।40 करोड़ रुपये से अधिक का बकाया पड़ा था। महादजी शिंदे ने जयपुर के दरबार में उठे प्रतिरोध को समझकर विनम्रता की नीति अपना ली। उन्होंने बादशाह के साथ राजपूताने का दौरा किया और सभी राजाओं से इस बात का निवेदन किया कि वह संकट की इस घड़ी में शीघ्रता से बकाये की धनराशि खजाने में जमा करें। मार्च 1786 में इस दबाव के परिणाम स्वरूप जयपुर राजघराने ने अनेक दौर की वार्ता के बाद 63 लाख रुपये की पहली किश्त खजाने में जमा करने पर सहमति जतायी। जब तक बकाया वसूली हो नहीं जाती, तब तक के लिए महादजी ने मराठा सैन्य टुकड़ी के साथ अपने उपसेनापति रायाजी पाटिल को जयपुर में ही रहने का निर्देश दिया। बादशाह के साथ महादजी वापस लौट आए। महादजी ने मथुरा की ओर प्रस्थान किया जहां अंग्रेजों का इशारा पाकर अलीगढ़ और आस-पास रोहिले मुसलमान लूट-पाट शुरु कर चुके थे।

इधर महादजी जयपुर से वापस लौटे उधर जयपुर और जोधपुर के राजघरानों ने फौरन दूसरे राजाओं के साथ आपात बैठक बुला ली। अप्रैल 1786 में जयपुर के दूत आनन्द राम और वजीर दौलत राम ने लखनऊ में डेरा डाल दिया ताकि ब्रिटिश आर्मी की सहायता से महादजी सिंधिया और बादशाह के अगले कदम का मुकाबला किया जा सके। लखनऊ में अंग्रेजों ने इस मौके का भरपूर फायदा उठाना तय कर लिया। ऊपरी तौर पर ब्रिटिश रेजीडेंट ने किसी भी फौजी सहायता से तो मना कर दिया लेकिन इस बात पर सहमति जतायी कि सभी राजपूत राजा मिलकर महादजी और बादशाह के किसी भी अगले कदम का विरोध करने में सक्षम है। इसी के साथ यह संकेत भी दिया गया कि कंपनी उनके इस काम में पीछे से मदद को तैयार रहेगी। लखनऊ से मिले इस आश्वासन ने जयपुर के राजा को महादजी के खिलाफ मोर्चा खोले रखने के लिए उत्साहित कर दिया। उन्होंने 63 लाख रुपये की जिस पहली किश्त को चुकाने का भरोसा महादजी को दिया था, उससे भी मुकर गए और रायाजी पाटिल को संदेश भेजा कि वह फौरन जयपुर छोड़कर दिल्ली चले जाएं। रायाजी पाटिल ने संदेश महादजी सिंधिया के पास भेज दिया कि जयपुर राजा वायदे से मुकर गए हैं। महादजी ने भी तय कर लिया कि जयपुर राजे को वह वचन हर कीमत पर निभाने का दस्तूर समझाकर ही मानेंगे। पूरे दल-बल के साथ महादजी ने जयपुर कूच की तैयारी शुरु कर दी। लालकिले की सुरक्षा मुगल सैन्यदल और अनूप गिरी के दस हजार घुड़सवार योद्धाओं के हवाले पहले से ही थी। मराठों की एक सैन्य टुकड़ी मथुरा और आगरा की सुरक्षा में तैनात की गई। इस प्रकार 75000 योद्धाओं के दल में से 30हजार की सेना लेकर महादजी जयपुर की ओर दोबारा चल पड़े। बादशाह को उन्होंने सुरक्षित लालकिले में ही रहने का सुझाव दिया।

24 मार्च 1787 के दिन महादजी शिंदे ने दौसा में डेरा डाल दिया। महादजी के आर-पार के रुख को देखकर जयपुर राजे घबड़ा गए। उन्हें उम्मीद नहीं थी कि महादजी इतनी जल्दी सर पर चढ़कर बैठ जाएंगे। दूसरे राजपूत राजाओं ने भी महादजी का संकेत पाकर खुद को जयपुर राजे के समर्थन से पीछे खींच लिया। महादजी के कारण ब्रिटिश सैनिक सहायता भी मिलने की उम्मीद न के बराबर थी। जयपुर नरेश ने फौरन दूत के जरिए दौसा में महादजी को संदेश भेज दिया कि एक मौका और दिया जाए। 5 अप्रैल 1787 को जयपुर नरेश ने संदेश भेजा कि 4 लाख रुपये की रकम फौरन दे देंगे। इसके बाद 22 लाख रुपये की रकम एक महीने के भीतर दे देंगे। शेष भुगतान 6 महीने के भीतर अलग-अलग किश्तों में कर दिया जाएगा। ढाई सौ साल पहले 3।40 करोड़ रुपये की कीमत आज के हिसाब से क्या रही होगी, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

महादजी ने जयपुर नरेश की बातों में अब फंसना स्वीकार नहीं किया। भरोसा टूट चुका था। लिहाजा उन्होंने रायाजी पाटिल और सहयोगी मछेरी नरेश को जयपुर किले की घेरेबंदी के निर्देश दे दिए। लेकिन चुनौती यहीं पर नहीं थी। दूसरी ओर महादजी के सैन्य दल की मुगल टुकड़ी के प्रमुख सिपहसालार जुल्फीकार अली खान और मंजूर अली खान ने अपने 7000 योद्धाओं के दल के साथ पहले तो वेतन को लेकर बगावत कर दी और आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। महादजी ने मुगल सेना को समझाने की भरसक कोशिश की और कहा कि जयपुर अभियान पूरा होने पर सभी का हिसाब बराबर किया जाएगा किन्तु दोनों सिपहसालार टस से मस न हुए। रही कसर आगरा के पूर्व सूबेदार मुहम्मद बेग हमदानी ने पूरी कर दी। मुगल वजीर आफरासियाब खान के कत्ल के बाद बादशाह शाह आलम ने उसे बर्खास्त कर दिया था। तब से वह अपनी एक छोटी सी सैन्य टुकड़ी के साथ भागता फिर रहा था। पहले रोहिलों के इलाके में शरण ली और बाद में चुपके से ब्रिटिश छत्रछाया में उनके संकेत पर इधर उधर शरण लेता घूमता रहा। संभवतः यही मौका था कि ब्रिटिश और राजपूत गठबंधन की संभावना में उसने अपनी भूमिका पहचान ली और महादजी की सैन्य टुकड़ी के मुगल योद्धाओं जुल्फिकार अली खान और मंजूर अली खान को उसने अपने साथ आने का संदेश भेज दिया, जिसके एवज में सभी सैनिकों को भारी मुआवजा देने का वायदा भी कर दिया।

इतिहास में इस सवाल का जवाब कम स्थानों पर मिलता है कि आखिर जुल्फिकार अली खान, मंजूर अली खान और इनके पीछे खड़े हुए मुहम्मद बेग हमदानी के पीछे किस गुप्त ताकत ने महादजी को उखाड़ फेंकने की साजिश रची थी? क्योंकि मुगल बादशाह के अस्तित्व को बचाने के लिए महादजी ने म्यान से तलवार निकाली थी। इसमें उनकी सोच थी कि कंपनीराज के खतरे से भारत को तबतक नहीं बचाया जा सकता जबतक कि एकजुट होकर भारतीय अपने स्वराज की स्थापना और उसकी रक्षा करने का वचन न ले लें। यही कारण है कि महादजी ने सिखों के साथ फौरन ही संधिकर एक दूसरे के साथ मित्रता के रिश्ते बना लिए। राजपूताना तब मुगल सल्तनत का ही अंग था लिहाजा वह उनके साथ सहयोग और समन्वय की नीति पर चलने की तरफ कदम बढ़ा चुके थे। लेकिन सवाल राजकोष का था जो रिक्त था और उसके सबसे बड़े बकाएदारों में राजपूताने के कई राजवंश थे। जयपुर की घेरेबंदी महादजी शिंदे ने कर ली थी। पर अचानक मुहम्मद बेग हमदानी को पीछे से ताकत मिलना और दूसरे मुगल योद्धाओं का सेना सहित महादजी के खिलाफ बगावत करना, इसके पीछे कंपनी के अफसरों की साजिश से इन्कार नहीं किया जा सकता।

15 जून 1787

महादजी सिंधिया ने गद्दारी और बगावत करने वाले अपने साथ आई मुगल टुकड़ी को बर्खास्त कर दिया। अब केवल 30,000 मराठा योद्धा और जयपुर नरेश की सेना आमने-सामने थी। बागी मुगल योद्धाओं ने मुहम्मद बेग हमदानी की अगुवाई में जयपुर नरेश से हाथ मिला लिया। जयपुर से 30 मील दक्षिण पूर्व में लालसोट के पास मोर्चेबंदी शुरु हो गई। अंग्रेजों ने तो समझ लिया कि लालसोट

मराठों के लिए नया पानीपत साबित होगा और हालात भी इसी तरह के बन चुके थे लेकिन महादजी शिंदे सियासत के चतुर खिलाड़ी थे। उन्हें मालूम था कि मुगल योद्धा और हमदानी उनके खिलाफ साजिश रच चुके हैं और ऐन वक्त पर उन्हें धोखा मिलेगा। उन्होंने पीछे से बुंदेलखंड में तैनात मराठा टुकड़ी को अलर्ट पर रख दिया था।

जैसे ही मुगल टुकड़ी ने बगावत की सुगबुगाहट शुरु की, खांडेराव अप्पा की अगुवाई वाली बुंदेलखंड की मराठा टुकड़ी ने लालसोट की ओर कूच कर दिया। दूसरी मराठी टुकड़ी जो राठौड़ राजाओं के साथ थी, और मराठा सैन्य दल का फ्रांसीसी कमांडर डी बोइगन भी आधुनिक हथियारों से लैस होकर लालसोट की ओर बढ़ चला। एक साथ मराठों की सैन्य शक्ति का समंदर ही राजपूताने को घेरने के लिए बढ़ चला। लालसोट में इतने बड़े सैन्य दल को एक साथ देखकर जयपुर नरेश के माथे पर पसीने छूट गए। युद्ध शुरु होते ही उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। महादजी शिंदे की सेना ने जयपुर नरेश को तो बख्श दिया लेकिन मुहम्मद बेग हमदानी और दूसरे बागी सरदारों को उनके किए की सजा लालसोट के मैदान में ही दे दी। हमदानी बेमौत मारा गया और इसी के साथ कंपनीराज के छुपे हुए शत्रु जो हर हालत में मराठा नायक महादजी के खिलाफ व्यूह रचना के मार्गदर्शक बने थे, उनके भी छक्के छूट गए। जयपुर नरेश के साथ एक-एक पाई का हिसाब महादजी शिंदे ने पूरा किया। इसके बाद उन्होंने दीघ और मच्छेरी में कुछ समय आतिथ्य ग्रहण कर मथुरा की ओर रुख किया जहां रोहिल्ला सरदार गुलाम कादिर खान अराजकता फैला रहा था। महादजी के आते ही वह अलीगढ़ की ओर भाग गया और जब रायाजी पाटिल ने उसका पीछा किया तो वह अलीगढ़ से निकलकर फिर से अपने उसी पुराने ठिकाने यानी नजीबाबाद पहुंचकर छुप गया। महादजी ने इस अवसर पर नजीबाबाद की ओर दोबारा कूच करने की बजाए बकाया वसूल अभियान के तहत अलवर, जोधपुर, अजमेर समेत कई जागीरों और उसके बाद मालवा मिशन पर ध्यान केंद्रित किया जहां कई जागीरदार लंबे अरसे से राजकोष में भुगतान नहीं कर रहे थे। इधर महादजी सल्तनत की साख बहाली में दिन-रात एक कर रहे थे दूसरी ओर एक के बाद एक मुगल योद्धा ही बगावत पर उतारू थे।

आगरा के मुगल सूबेदार इस्माइल बेग ने इस बार बादशाह का ध्वज आगरा के किले से उतार फेंका। उसने रोहिले सरदारों से हाथ मिला लिया। इस बगावत के पीछे भी अंग्रेजों की मिलीभगत को नकारा नहीं जा सकता। बादशाह ने इस हालत से निपटने के लिए इलाहाबाद में अंग्रेजों की शरण में रह रहे अपने बेटे जवानबख्त को बुलावा भेजा। जवांबख्त से बादशाह को उम्मीद थी कि वह राज-काज में मदद करेगा लेकिन वह तो बिल्कुल ही व्यर्थ साबित हुआ। बादशाह ने उसे आगरा का सूबेदार नियुक्त कर वहां वफादार मुगल सैन्य टुकड़ी के साथ मिलकर स्थिति संभालने का निर्देश दिया लेकिन जवानबख्त ने आगरा पहुंचकर रोहिले सरदारों और इस्माइल बेग से मिलने के बाद सूबेदारी संभालने का मंसूबा त्याग दिया। लेकिन अब वह किस मुंह से दिल्ली लौटता। लिहाजा उसने दिल्ली लौटने की बजाए सीधे लखनऊ का रुख किया और फरवरी 1788 में अंग्रेजों की शरण में सुरक्षित पनाह ले ली। मुगल सूबेदारों और दूसरे प्रमुख योद्धाओं को उकसाकर उन्हें महादजी के खिलाफ उकसाने की अंग्रेजों की नीति और बागियों से मिलीभगत अब बिल्कुल साफ सतह पर दिखने लगी थी। संभवतः अंग्रेजों ने जवानबख्त में छिपी संभावनाओं को पहचान लिया था कि बादशाह का खात्मा होते ही जवानबख्त को आगेकर वह मुगल सल्तनत पर कब्जा कर लेंगे, और इसके पूर्व मराठों को किसी कीमत पर पैर जमा लेने का मौका नहीं देंगे। इस प्रकार मराठा-मुगल युति सदा के लिए इतिहास का किस्सा हो जाएगी।

इससे पहले प्लासी की लड़ाई में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हराकर मीर जाफर को सिंहासन पर बैठाने और उसके बाद मीर जाफर को हटाकर मीर कासिम को कठपुतली के तौर पर आसीन कर दिया था। अंग्रेजों की यही योजना दिल्ली के लिए भी थी लेकिन महादजी शिंदे दीवार बनकर खड़े हो चुके थे जिन्होंने साल्बाई की संधि के जरिए प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध में अंग्रेजों को करारी मात दी थी। जाहिर तौर पर महादजी का दिल्ली सल्तनत में वजीर पद स्वीकार करना सबसे ज्यादा अगर किसी को खल रहा था तो वह कोलकाता में बैठे गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स के दिमाग में ही दर्द पैदा कर रहा था। महादजी अपने हर कदम की सूचना नाना फड़नवीस के माध्यम से पेशवा तक पहुंचा रहे थे। एक पत्र में ब्रिटिश चालों को लेकर उन्होंने नाना को लिखा-

"बादशाह के दो सबसे बड़े शत्रु हैं। पहला-अफगान शासक तिमूर शाह दुर्रानी जिससे ताकत पाकर रोहिले मुसलमान दिल्ली पर चढ़ते और धमकी देते रहते हैं और दूसरे-अंग्रेज। तिमूर शाह दुर्रानी तो बहुत दूर कंधार में है, उससे सीधा खतरा फिलहाल तो नहीं है लेकिन धूर्त अंग्रेज तो छाती पर चढ़कर बैठ गया है। उन्हें शायद लंदन से किसी संदेश का इंतजार है जिसके बाद वो मुगल सल्तनत को हाथ में लेने के लिए धावा बोल देंगे। इससे पहले कि अंग्रेज दिल्ली पर धावा बोलें हमें दिल्ली को मजबूत कर बंगाल पर चढ़ाई करनी है। हमारे पास समय बहुत कम है और करने के लिए बहुत सारे काम शेष हैं। खजाने को भरना पहली आवश्यकता है क्योंकि लंबे वक्त तक सैनिक भी बिना वेतन और सुविधाओं के हमारे साथ आगे नहीं बढ़ सकेंगे।"

जुलाई 1788

मॉनसून के बादल आसमान में गरजने लगे। घनघोर वर्षा ने ताल-तलैयों को उलट दिया। महादजी शिंदे पूरे सैन्य दल के साथ मालवा अभियान से दिल्ली लौट रहे थे। यमुना और दूसरी नदियों में आए बरसाती सैलाब ने उनका रास्ता बीच में ही रोक दिया था। नियति को यही मंजूर था। एक ओर विशाल सेना लेकर दिल्ली की

ओर बढ़ रहे महादजी के कदम मॉनसून ने रोक दिए तो एक दूसरी बाढ़ यमुना को पारकर आहिस्ता-आहिस्ता लालकिले के परकोटे की ओर चढ़ चली थी।

यह खूनी सैलाब रोहिल्ला सरदार जाबिता खान के बेटे गुलाम कादिर खान की अगुवाई में लालकिले को डुबोने के लिए बढ़ चला था। जाबिता खान तो इस बीच बीमार होकर चल बसा था लेकिन उसका बेटा कादिर खान दिलोदिमाग में लालकिले में बिताए गए शाहीकैद के तकलीफ भरे दिनों और अपने सगे-संबंधियों की हत्या के दर्दनाक मंजर को यादकर दिनबदिन खूंखार होता चला गया था। इतिहास स्रोतों के अनुसार, केवल 2000 मुस्लिम हथियारबंद घुड़सवारों को लेकर वह लालकिले को यमुना में बहा देने का संकल्प लिए रात के अंधेरों में दिल्ली की ओर खामोशी से निकल पड़ा था। सवाल यही उठता है कि उसे इसी समय लालकिले की ओर कूच करने का संकेत किस रहस्यमयी शक्ति से मिला था। जाहिर है यह काम कंपनी के अंग्रेज अफसरों का था जिनका दिमाग कंम्प्यूटर से भी तेज काम कर रहा था और शातिरों में भी महा-शातिर था, समय की टिक-टिक सुई से गुजर रहे हर क्षण के प्रति अंग्रेज बड़ी सावधानी से हिन्दुस्तान को हड़प कर जाने की चालों को अमली जामा पहनाने में जुट चुके थे।

अंग्रेजों का खुफिया तंत्र पूरे हिन्दुस्तान में फैल गया था और उन्हें भारत के हर कोने में चल रही राजे-रजवाड़ों की राजनीति की हर बारीक मालूमात पहले से रहती थी। मराठों से साल्बाई की संधि के बाद वो खामोश कहां बैठे। उन्होंने हैदर अली और उसके बाद टीपू के खिलाफ घेरेबंदी तेज कर दी। इधर महादजी मालवा से दिल्ली जाते समय में मॉनसून की बाढ़ में फंस चुके थे। दूसरी ओर अंग्रेज रेजीडेंट कहां, कब और कौन किससे फंसा हुआ है, कहां कौन और कब तक रुका हुआ है, राजनीतिक परिस्थिति क्या है, मौसम का हाल क्या है, कब कहां किसे पहुंचने में कितना समय लगेगा और कैसे कितने समय के भीतर किसका काम तमाम हो सकता है, इसका सारा हिसाब-किताब और गणित लगाकर पूरी रिसर्च टीम के साथ वॉरेन हेस्टिंग के इशारे पर तेजी से काम कर रहे थे।

अंग्रेजों के पास अपना पुख्ता सूचना तंत्र था। अंग्रेजों ने भांप लिया था कि लालकिले पर चढ़ाई का यही सबसे उपयुक्त समय है। क्योंकि तूफानी बारिश में कोई सहायता बादशाह तक शीघ्र नहीं पहुंच सकेगी। लालकिले की सुरक्षा में तैनात मुगल टुकड़ी को भी मुहम्मद बेग हमदानी की तरह चंद टुकड़े देकर सुरक्षा से हटाया जा सकता है। अनूपगिरी के 10हजार योद्धा पहले ही वेतन आदि न मिलने से बदहाल और उत्साहहीन हो चुके हैं। उसमें से कई तो दल बनाकर और छुपकर दिल्ली में आए दिन डकैती भी कर रहे हैं, यह सूचना कंपनी के पास पहले से थी। ब्रिटिश अफसरों ने ही संभवतः अनूपगिरी को भी लालच दे दिया था कि अब मराठे दिल्ली की राजनीति पर हावी हैं और उसे मराठों से कुछ मिलने का भ्रम नहीं पालना चाहिए। क्यों नाहक ही वो अपना समय दिल्ली की सुरक्षा में बरबाद कर रहा है, जो चाहिए ले ले और दिल्ली से निकल ले। अनूपगिरी को जिस भी माध्यम से यह संदेश मिला, उसने फौरन ले-देकर दिल्ली से निकल लेना ही मुनासिब समझा। वह वैसे भी इसीलिए रुका था ताकि महादजी शिंदे के आते ही सेना का हिसाब पूरा करे और दिल्ली से निकलता बने। उसका ये काम अंग्रेजों का संकेत पाकर दूसरे मुस्लिम अमीर-उमरों ने ही पूरा कर दिया।

महादजी को अंदेशा था कि दिल्ली में बड़ी गड़बड़ी इस बीच हो सकती है। उन्होंने रावलोजी शिंदे और भगीरथ शिंदे की अगुवाई में 2000 हथियारबंद घुड़सवारों की सेना अलग से लालकिले की सुरक्षा के लिए रवाना कर दी। उनकी सोच थी कि मॉनसून के बादल छंटते ही वह भी पूरे सैन्यदल के साथ दिल्ली में डेरा डाल सकेंगे।

मॉनसून के बादल आसमान में गरजने लगे। घनघोर वर्षा ने ताल-तलैयों को उलट दिया। महादजी शिंदे पूरे सैन्य दल के साथ मालवा अभियान से दिल्ली लौट रहे थे। यमुना और दूसरी नदियों में आए बरसाती सैलाब ने उनका रास्ता बीच में ही रोक दिया था। नियति को यही मंजूर था। एक ओर विशाल सेना लेकर दिल्ली की ओर बढ़ रहे महादजी के कदम मॉनसून ने रोक दिए तो एक दूसरी बाढ़ यमुना को पारकर आहिस्ता आहिस्ता लालकिले के परकोटे की ओर चढ़ चली थी।

15 जुलाई 1788

रोहिल्लों ने गुलाम कादिर खान की अगुवाई में यमुना किनारे शहादरे में डेरा डाल दिया। लालकिले की छत से यमुना पार उसका सैन्य दल साफ दिखाई देता था। लालकिले में दरबारियों के बीच अनेक तरह की गुफ्तगू शुरु हो चुकी थी। हरम में हलचल तेज थी लेकिन बादशाह पर कोई फर्क नहीं था। उन्हें लग रहा था कि जिस गुलाम कादिर को उन्हें इतने प्रेम से पाला, जिसकी जान बचाई और जिसे मुगलवंश का नमक खिलाया, वो भला उनका कहना क्यों नहीं मानेगा। हालात अगर बेकाबू भी हुए तो उसे कहीं की सूबेदारी देकर साथ मिला लिया जाएगा। दूसरी ओर, मामले में पेंच तब आया जब अहमद शाह अब्दाली की हिंदोस्तानी विधवा मलिका-ए-जमानी बेगम ने गुलाम कादिर खान से हाथ मिला लिया। जमानी

अपने 2000 हथियारबंद घुड़सवारों के साथ गुलाम कादिर खान ने कश्मीरी गेट की ओर बढ़ा। पहले वह कश्मीरी गेट के पास मौजूद उस कुदेशिया बाग के शाही महल में पहुंचा जहां उसने बचपन में अपने दिन गुजारे थे। कुछ समय तक वहां रुककर उसने पूरे दस्ते के साथ कश्मीरी गेट में दाखिल होकर लालकिले की ओर रुख किया। कश्मीरी गेट पर उसे रोकने के लिए कोई भी मुगल दस्ता मौजूद नहीं था।

बेगम अहमद शाह के गुजरने के बाद भारत लौट आई थी और कादिर खान के बाबा नजीबुद्दौला के साथ मिलकर अफगान सियासत को दिल्ली में धार दे रही थी। उसने गुलाम को लालच दिया कि अगर वो शाह आलम द्वितीय को लालकिले के तख्त से हटाकर बदले में उसके नाती और बादशाह के रिश्ते में भतीजे बीदर बख्त को सिंहासन पर आसीन कर दे तो उसे 12 लाख रु। नकद और दूसरे उपहारों से मालामाल कर देगी। शाह आलम द्वितीय के बादशाह बनने से पहले बीदर के पिता ही मुगल सल्तनत के बादशाह थे। कादिर खान ने भी इसके लिए हामी भर दी क्योंकि उसे लालकिले में घुसने की साजिशों को अंजाम देने के लिए पग-पग पर सल्तनत से जुड़े खास लोगों की मदद चाहिए थी।

18 जुलाई 1788

रोहिले सरदारों ने यमुना पारकर दिल्ली में घुसने के सभी दरवाजों को चारों ओर से घेर लिया। चारों ओर हाहाकार मच गया। दिल्ली में भयानक उलट-पुलट की राजनीति रातों रात शुरु हो चुकी थी, तख्तापलट होकर रहेगा, यह देखकर मुगलवंश के पुराने वफादार भी डोलने लगे। हालांकि सभी को उम्मीद थी कि महादजी शिंदे की अगुवाई में मराठों के रहते बादशाह का बाल-बांका भी नहीं होगा। उधर आगरा किले का बागी सूबेदार इस्माइल बेग भी गुलाम कादिर खान का इशारा मिलते ही अपने सैन्य दल के साथ लालकिले की घेरेबंदी के लिए कूच कर गया। उसे मराठा घुड़सवारों के दल के दिल्ली की ओर बढ़ने की सूचना मिल चुकी थी। उसने एक सैन्य दल मराठा योद्धा रावलोजी शिंदे और भगीरथ शिंदे को भ्रमित करने के लिए फरीदाबाद की ओर रवाना कर दिया, ताकि मराठा टुकड़ी लालकिले पर कब्जा होने से पहले दिल्ली में दाखिल ही न हो सके। रोहिलों के सामने एक समस्या अनूप गोसाईं और उसके लड़ाकों को लेकर थी। सल्तनत से जुड़े अमीर-उमरों ने उसे खिला-पिलाकर दिल्ली से दूर मौज की दूसरी चीजों में फंसाए रखने का बंदोबस्त कर दिया। अनूप गोसाईं को इस बात की भनक तक न लग सकी कि उसके पीठ पीछे लालकिले में किस भयानक तख्तापलट की रूपरेखा मलिका ए जमानी ने तैयार कर ली है। बेगम जमानी की मुहिम ने असर दिखा दिया था ताकि रोहिलों की फौज बगैर किसी अड़चन के लालकिले में दाखिल हो सके। जाहिर तौर पर पूरी साजिश अबतक के सबसे भयानक मोड़ पर पहुंच चुकी थी। इसमें कोई शक नहीं था कि इसके अधिकतर किरदार ब्रिटिश अफसरों की छत्रछाया में ही अपने अपने रोल को पूरा कर रहे थे।

29 जुलाई 1788

अपने 2000 हथियारबंद घुड़सवारों के साथ गुलाम कादिर खान कश्मीरी गेट की ओर बढ़ा। पहले वह कश्मीरी गेट के पास मौजूद उस कुदेशिया बाग के शाही महल में पहुंचा जहां उसने बचपन में अपने दिन गुजारे थे। कुछ समय तक वहां रुककर उसने पूरे दस्ते के साथ कश्मीरी गेट में दाखिल होकर लालकिले की ओर रुख किया। कश्मीरी गेट पर उसे रोकने के लिए कोई भी मुगल दस्ता मौजूद नहीं था। जो भी मुगल योद्धा मौजूद थे, सबके सब लालकिले की सुरक्षा में तैनात थे। इतिहास स्त्रोतों के मुताबिक, गुलाम कादिर ने अब धूर्त और कुत्सित सियासत का खेल खेलना शुरु कर दिया। लालकिले के मुख्य द्वार की ओर न जाकर उसने सुनहरी मस्जिद में शरण ली। उसे मालूम था कि मुख्य द्वार की ओर बढ़ने पर उसके ऊपर प्रति-आक्रमण हो सकता है। मस्जिद में उसने अपनी फौजी टोली के साथ नमाज अता की और बादशाह के पास मिलने का संदेश भिजवाया।

बादशाह की ओर से मिलने का कारण जानने के लिए जब कुछ दरबारी उसके पास आए तो उसने कुरान पर हाथ रखकर शपथपूर्वक कहा कि उसका कोई इरादा बादशाह को कोई नुकसान पहुंचाने का नहीं है क्योंकि उसने तो बादशाह का नमक खाया है, वह तो उनसे आशीर्वाद लेने आया है क्योंकि पिता जाबिता खान की मौत के बाद अब रोहिल्लों की सियासत का वही मुखिया है, इसलिए वह चाहता है कि बादशाह एक बार उसके ऊपर हाथ रखकर उसे अभयदान दे दें, वह आगे चलकर बादशाह की वफादारी में ही सारी राजनीति करेगा। बादशाह ने यह सुनकर वापस संदेशा भिजवाया कि महज उनसे मिलने के लिए इतने भारी भरकम लश्कर के साथ दिल्ली आने की क्या जरुरत थी। शहादरे में कई हफ्तों तक डेरा डाले रहना, फिर रातों रात दिल्ली पर चढ़ आना यह वफादार लोगों की पहचान नहीं है। गुलाम कादिर खान ने बदले में संदेश भिजवाया कि उसने मराठों के डर से फौज साथ रखी है लेकिन उसकी नीयत पर जहांपनाह संदेह ना करें, जबसे वह शहादरे में और अब दिल्ली में ठहरा है, उसके किसी सैनिक ने दिल्ली के किसी परिंदे के पर

को भी छूने की कोशिश नहीं की है। इस प्रकार के तमाम सवाल-जवाब के बाद बादशाह ने गुलाम कादिर खान के साथ मुख्य द्वार पर भी संदेश भिजवा दिया कि ठीक है, गुलाम कादिर खान केवल 10 सैनिकों के साथ लालकिले में दाखिल हो सकता है।

लालकिले के मुख्य द्वार की सुरक्षा का जिम्मा मंसूरअली खान के नेतृत्व में था। बादशाह का यह संदेश मिलते ही कि गुलाम कादिर खान को किले में आने दिया जाए, उसने दरवाजे खोल दिए। दरअसल मंसूर अली खान भी पहले से ही साजिश में शरीक हो चुका था। बादशाह ने तो गुलाम कादिर खान के साथ केवल 10 लोगों को ही प्रवेश की अनुमति दी थी, उसने संदेश के दूसरे हिस्से को बाकी मुगल योद्धाओँ से छुपाने की भरसक कोशिश की। संदेश मिलते ही गुरिल्ला योद्धाओँ की तरह गुलाम कादिर खान अपने पूरे 2000 हथियारबंद घुड़सवार सैनिकों के साथ मुख्य द्वार तक पहुंच गया। इसके पहले कि किले के चारों ओर सुरक्षा में तैनात दूसरे मुगल योद्धा सबको घुसने से रोकते, तबतक मुख्य द्वार पर गुलाम कादिर खान के योद्धाओं का नियंत्रण हो चुका था। मंसूर अली खान ने सीधे अमानत में खयानत की। मुख्य द्वार की चाभी और दूसरे संचालन के उपकरण गुलाम कादिर खान के हवाले कर वह वहां से खिसक गया। गुलाम कादिर खान ने मुख्य दरवाजा भीतर से बंदकर एक टुकडी वहीं तैनात कर दी, दूसरे हिस्से को किले का चारदीवारों पर नज़र रखने का फरमान सुनाया और 10 की बजाए एक हजार खूंखार लड़ाकों को लेकर किले के भीतर दीवाने आम की तरफ बढ़ चला। लालकिले में खतरे की घंटी बज चुकी थी। खतरे की घंटी सुनते ही बादशाह शाह आलम अपने आराम कक्ष से दौड़कर अपने चारों ओर किन्नरों की पूरी सुरक्षा गारद के साथ दीवान-ए-खास में आ गए, जहां उनके पूर्व वजीर नजफ खान के वफादार मुगल योद्धाओँ की एक अहम टुकड़ी भी उनके इर्द-गिर्द एकत्रित होकर सुरक्षा में मोर्चा ले चुकी थी। शहजादों में सबसे बड़ा प्रिंस अकबर और दूसरे सभी 27 शहजादे जिसमें 10 शहजादों की उम्र 4 साल से 13 साल के बीच थी, वो भी अपनी अपनी माताओं के साथ कुछ दौड़ते तो कुछ गोद में गिरते-पड़ते अपने पिता जहांपनाह शाह आलम द्वीतीय के चारों ओर घेरा बनाकर इस कदर खड़े हो गए कि वह तो मुल्क के बादशाह हैं, उनके रहते उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है?

प्रिंस अकबर ने पिता के माथे पर चिंता की लकीरें पढ़ लीं। उसने पिता से कहा कि वह शांत न बैठें और जितने भी मुगल योद्धा हैं, उन्हें मुकाबले का आदेश भर दें, वो खुद आगे बढ़कर गुलाम कादिर खान को भीतर घुसने से रोकेगा और या तो कादिर को मार गिराएगा या खुद ही किले और जहांपनाह की सुरक्षा में शहीद हो जाएगा। बादशाह शाहआलम के पास सिवाय अफसोस के कोई चारा नहीं था। पहले तो शत्रुवंश के संपोले को पालने की और फिर बिना जाने-समझे उसे किले में घुस आने की अनुमति देकर वह अपने जिंदगी की सबसे बड़ी गलती कर चुके थे। उन्हें मालूम था कि उनके साथ कुछ लोग गद्दारी कर रहे हैं। ये गद्दार मुगलवंश में और लालकिले में ही पल रहे हैं। इन गद्दारों की नमाज रोज जामा मस्जिद में हो रही है जहां बादशाह की बरबादी का खुत्बा रोज ही पढ़ा जा रहा है। लेकिन इन खबरों को जानकर भी उनसे अनजान बनने की कुछ तो कीमत पीढ़ियों को चुकानी ही पड़ती है। बादशाह ने प्रिंस अकबर का माथा चूम लिया और आहें भरते हुए कहा- वही होगा जो मंजूरे खुदा होगा। अल्लाह की करनी से कौन बच सका है। बादशाह के चारों ओर मुश्किल से शहजादों और पूरी सुरक्षा गारद समेत 100 लोग और कहां एक हजार खूंखार योद्धाओं ने लपलपाती तलवारों को चमकाते हुए पूरे दीवान-ए-खास को चारों ओर से घेर लिया। गुलाम कादिर खान ने फौरन आवाज दी कि जिसके पास भी हथियार हैं, फौरन जमीं पर फेंक दें नहीं तो वह शहजादों की लाशें धरती पर बिछवा देगा। सुरक्षा गारद ने हथियार जमीं पर फेंक दिए, सबके सब हाथ उठाकर एक-एककर दीवान-ए-खास से बाहर निकाल दिए गए।

गुलाम कादिर खान ने पूरे किले मे मुनादी करवा दी कि जितने भी हथियार बंद मुगल योद्धा हैं, वह फौरन आत्म समर्पण कर दें नहीं तो बादशाह को शहजादों समेत मार गिराया जाएगा। किले की पहरेदारी कर रहे सारे मुगल योद्धाओं को तो सांप सूंघ गया। वो जहां के तहां खड़े रह गए और देखते ही देखते जहांपनाह शहजादों समेत बंधक बना लिए गए। सभी ने हथियार जहां के तहां रख दिए और सभी को किले के कैदखाने में बारी-बारी से जाने को मजबूर कर दिया गया। बादशाह के सभी 27 शहजादे प्रिंस अकबर के साथ औरंगजेब द्वारा सफेद संगमरमर से बनवाई गई मोती मस्जिद में बंद कर दिए गए। इतिहास स्रोतों में जिक्र आता है कि इसके बाद गुलाम कादिर खान बादशाह के सिंहासन पर कूदकर बैठ गया और उचककर उसने वहीं खड़े बादशाह के गले में हाथ फेरा, अपने मुंह में बगल में रखे हुक्के को गुड़गुड़ाकर उसने धुआं खींचा और पूरा का पूरा बादशाह के चेहरे पर ही उड़ेल दिया। इस प्रकार लालकिले के भीतर क्रूर तांडव शुरु हो गया जिसकी अक्षरशः रिपोर्ट पेशवा के दरबार में बाद में मराठी गुप्तचरों ने लिखित रूप से भेजी। बादशाह के नौकरों, खानसामों, बेगमों आदि के विस्तार से दिए गए बयान भी इस बारे में दूसरे मुगल दस्तावेजों का हिस्सा बने। 29 जुलाई की रात दिल्ली की सांसे थम गईं। जो जहां था वहीं छुप गया। बादशाह रात भर इधर से उधर चहल-कदमी करते रहे। गुलाम कादिर खान ने किले के चप्पे चप्पे की तलाशी कर रात भर में सारी छनवा डाली। दीवाने-आम के हयात बाग में अपने सैनिकों के साथ उस रात उसने छककर दावत उड़ाई।

30 जुलाई 1788

सुबह होते ही गुलाम कादिर खान फिर अपने सैनिकों के साथ दीवान-ए-खास में आ धमका। उसने नौकरों से जहांपनाह को वहीं बुलवाया। जहांपनाह शाह आलम ने उसे जब दोबारा अपने सिंहासन पर पैर पसारकर बैठे देखा तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने

कहा कि मैंने तुम्हारे ऊपर भरोसा किया, तुमने कुरान की सौंगध खाई है लेकिन तुमने तो मेरे साथ छल किया है, कुरान का नाम लेकर, अल्लाह का नाम लेकर तुमने इस सल्तनत के साथ धोखा किया है। इधर बादशाह बुदबुदाते जा रहे थे, उधर गुलाम कादिर खान ने अपने सैनिकों को इशारा किया। थोड़ी ही देर में दीवान-ए-खास में मलिका-ए-जमानी बेगम अपने नाती बीदर बख्त के साथ हाजिर थीं। गुलाम कादिर खान ने सिंहासन से उतरकर फौरन उनका स्वागत किया। रोहिले सैनिक उन्हें मुबारकबाद देने लगे। बादशाह शाह आलम अकेले खड़े होकर कोने में सब लाचारगी से देख रहे थे, उनका ताज उठाकर गुलाम कादिर खान ने बीदर बख्त के सिर पर रख दिया। बादशाह के कमर में बंधी शाही तलवार और खंजर भी कादिर ने बीदर बख्त के हवाले कर दी। नक्कारखानों में पठान सैनिकों ने फौरन ड्रम बजाने शुरु कर दिए। बाग से तोड़कर लाए गए ताजे गुलाब के फूलों की वर्षा भी हुई। बीदर बख्त अब बादशाह बीदर शाह हो चुका था, गुलाम कादिर खान और बेगम मलिका-ए-जमानी की ओर से घोषित मुल्क का नया बादशाह। बीदर की उम्र उस वक्त 35 साल के आस-पास रही होगी। अपने सर पर ताज पाकर वह तो उछल ही पड़ा। उसके पिता शाह आलम द्वितीय के पहले मुगलिया सल्तनत के बादशाह थे जिन्हें 1754 में गद्दी छोड़नी पड़ी। उसकी मां कंधार के दुर्रानी परिवार से थीं। पिता के गद्दी से हटने और मां की मौत के बाद वह अपनी नानी की शरण में ही दिल्ली की अपनी शानदार कोठी में रहता था। उसकी नानी और उसका बादशाह बनने का सपना मुगलवंश से गद्दारी के बाद तो पूरा हो गया लेकिन ये खुशी बस केवल चंद पलों तक ही उनके पास रह सकी। बीदर बख्त के सर पर ताज रखने के फौरन बाद गुलाम कादिर खान ने उसकी जमानी बेगम से वायदे के तहत 12 लाख रु नकद और सोने-जेवरात आदि का उपहार मांग लिया। बदले में जमानी बेगम ने गुलाम कादिर खान से कहा कि लालकिले के शाही खजाने और सारी छुपी हुई दौलत मिलने के बाद उसी में से कादिर खान को उसका हिसाब दे दिया जाएगा। गुलाम कादिर खान यह सुनकर तमतमा उठा। उसने फौरन ही जमानी बेगम के गर्दन पर तलवार रख दी कि कौन बादशाह और कहां का बादशाह। दो दिन के भीतर वायदा नहीं निभाया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। उसने जमानी बेगम को अपने सैनिकों की कैद में डाल दिया, बीदर बख्त को वायदे के मुताबिक कोठी से या कहीं से भी सारी रकम और उपहार का इंतजाम करने की सख्त ताकीद कर दी। गुलाम कादिर ने इसके बाद लालकिले के शाही खजाने की ओर रुख किया। वह खजाना खाली देखकर गुस्से से भर गया और बादशाह समेत सारे शहजादों, शहजादियों और बेगमों के कपड़े तक उतरवा डाले। उसने बादशाह को सीधी धमकी दी कि अगर उसे 24 घंटे के भीतर खाली खजाने से हटाई गई सारी दौलत और किले में दबा-छुपाकर रखी गई दौलत की जानकारी नहीं दी गई तो फिर वह वो सब करेगा जो उसके परिवार और पिता के साथ मुगल-मराठा सेना ने और मिर्जा नजफ खान ने बादशाह के इशारे पर नजीबाबाद किले की लूट के दौरान और फिर शाही कैद में इसी लालकिले में किया था। गुलाम कादिर खॉं ने अपने योद्धाओं को दिल्ली के सारे गली मोहल्ले लूट लेने और बरबाद कर देने के निर्देश भी दे दिए। लिहाजा पठान रोहिल्ले दल बना-बनाकर लालकिले से निकलते और दिन-रात लूटमार कर वापस लालकिले में इकट्ठा होकर सारी लूटी दौलत का हिसाब तैयार करते। इस लूट में गुलाम कादिर खान ने सुनहरी मस्जिद के गुंबज पर चढ़े सोने के आवरण भी उतरवा डाला। किले के भीतर मोती मस्जिद में सोने की नक्काशी समेत दीवाने खास, दीवाने आम के सारे कीमती फानूस, जवाहिरातों के नमूने, कलाकृतियां, सोने-चांदी की परतें सबकुछ उसने उतरवाकर मानो पूरे किले को ही बेआबरू कर डाला।

दिल्ली शहर के सारे बैंकर, सारे सेठ, सारे साहूकार, सारे दौलतमंद रईस, तवायफों के कोठे आदि सबकुछ बुरी तरह से रोहिल्ला मुस्लिमों ने रौंद डाले। जवान औरतों के साथ दरिंदगी का आलम दिल्ली की सड़कों पर आम हो गया। नशे में धुत रोहिल्ले सरदार जब जिसे चाहते किले में उठा ले जाते और फिर वहां से कोई जीवित लौटकर वापस नहीं आता। इस जुल्मोसितम को देखकर दिल्ली का हर बाशिंदा त्राहिमाम कर उठा। हर किसी को लग रहा था कि मानो नादिर शाह और अब्दाली की प्रेतात्माएं ही फिर से दिल्ली पर कहर ढा रही हैं। 50 करोड़ से ज्यादा की रकम केवल और केवल पुराने शहर की लूट से गुलाम कादिर को हासिल हुई। लालकिले के गुप्त खजाने की जानकारी के लिए गुलाम कादिर ने सारे नौकरों को नंगाकर किले में उल्टा लटका डाला। दिन-रात उनके ऊपर कोड़े बरसने लगे। अपने हरम और महल के झरोखों से जब यह तस्वीर शाह आलम और उनकी बेगमें, बेटियां देखती तो उनके रौंगटे ही खड़े हो जाते। गुलाम कादिर जानबूझकर अभी तक शाही परिवार पर सितम नहीं ढा रहा था कि कोई ना कोई टूटकर उसे गुप्त खजाने की जानकारी दे ही देगा। लेकिन यह उसकी भूल थी, कोई गुप्त खजाना किले में होता तब न कोई उसे जानकारी देता। गुलाम कादिर को लग रहा था कि शाह आलम जानबूझकर उसे खजाने की जानकारी नहीं दे रहा है और चुप्पी साधे पड़ा है। अब उसने शाह आलम की खामोशी तोड़ने के लिए उसके हरम पर ही धावा बोल दिया। इसी के साथ पूर्व बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के परिवार समेत जितने भी शाही परिवार किले में उस समय अलग-अलग ठिकानों में रह रहे थे, उसने सभी की बेगमों-बेटियों को वस्त्रहीन कर किले में परेड कराने के जल्लादी निर्देश सैनिकों को दे दिए। शाह आलम की आंखों के सामने उसने उनके प्रिय शहजादों प्रिंस अकबर और प्रिंस सुलेमान को नंगा कर तब तक कोड़े बरसाने और दौड़ाने का हुक्म सैनिकों को दिया जबतक कि वो मुंह से खून न फेंक दें। अपने कलेजे के टुकड़ों पर अत्याचार देखकर शाह आलम ने गुलाम कादिर खान के पैरों पर सर रख दिए, रोते हुए गुलाम से गुजारिश भी की कि जो अत्याचार और जुल्म ढाने हैं, वो उसी पर

ढाए, उसके बीवी, बच्चों, बेटियों को बख्श दे। लेकिन गुलाम कादिर के दिमाग पर मानो शैतान सवार हो चुका था। उसने अपने खूंखार रोहिल्ले मुस्लिम सरदारों को चिल्लाकर कहा कि इस बकवादी को पटकर इसे अंधा कर दो। शाह आलम ने ये सुना तो वो बिलखते हुए उठ खड़े हुए और कहने लगे-ये क्या कह रहे हो गुलाम कादिर। याद करो जब मैंने तुम्हारी जान बचाई थी। इन्हीं आंखों के सामने इसी किले में तुम्हें मौत के मुंह से निकाला था। तब हर शख्स तुम्हारी जान का प्यासा था। ये जुल्म मत करो। देखो, इन आंखों ने बीते 60 सालों से केवल और केवल कुरान की रोशनी में जिंदगी गुजारी है, उसके पन्ने पढ़-पढ़ कर अल्लाह की बंदगी करते हुए ये आंखें रौशन हुई हैं। अल्लाह के लिए ऐसा मत करो। ऊपरवाले को जरा याद करो, रहम करो गुलाम कादिर रहम करो। शाह आलम ने गुलाम कादिर से अल्लाह और कुरान के नाम पर रहम की लाख भीख मांगी लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। आदेश के मुताबिक दो रोहिल्ले मुसलमान दो गरम नुकीली सलाखें लेकर गुलाम कादिर के सामने हाजिर हो चुके थे। रोहिल्लों में से दो योद्धा हाथ में मोटे डंडे लेकर आए और शाह आलम के घुटने, जांघों और पिंडलियों पर तेजी से डंडे बरसने लगे। कादिर पूछता रहा कि वक्त है बता दो कि दौलत कहां छुपा रखी है, बता दो लेकिन लगातार डंडों की मार से पछाड़ खाकर जमीन पर गिरकर तड़पते शाह आलम की जुबां पर बिलखते हुए केवल यही आवाज थी कि मेरा सबकुछ लुट चुका है गुलाम कादिर, अल्लाह के लिए रहम करो, मुझे बख्श दो। गुलाम कादिर के ऊपर न कोई असर होना था और ना हुआ। अचानक उसने रोहिलों के हाथ से सलाखें अपने हाथ में लीं और जमीन पर गिरकर तड़प रहे शाह आलम की आंखों में घुसेड़ दीं। पानी से निकली मछली की माफिक शाह आलम जमीन पर या अल्लाह या अल्लाह कहकर चीखने-चिल्लाने और तड़पने लगे लेकिन उनके हाथ पैर रोहिल्ले मुसलमानों ने इस कदर दबा रखे थे कि टस से मस न हो।

आंखों में सरसराते सर्प की तरह घुस गई सलाखों की तपन मानो रीढ़ की हडडी तक भीतर सबकुछ तपाती-कंपाती उतरती चली गई। खून का फव्वारा आंखों से फूटकर बाहर बहने लगा। जैसे मुगल सल्तनत ने हिंदुस्तान के लाखों निर्दोषों की जिंदगियां समाप्त करने का भयानक पाप बीते 200 साल में किया था, उसी सल्तनत के किले में उन्हीं काले कर्मों की सजा शायद उसी 'इस्लामोफोबिया' से पैदा हुआ एक जुल्मी शैतान बादशाह शाहआलम को दे रहा था। शाह आलम की रोशनी जाती रही और उनकी जिंदगी में सदा के लिए अंधेरा ही अंधेरा पसर गया।

मुगल दस्तावेजों के मुताबिक, सलाखें घोंपने के पहले गुलाम कादिर ने शाह आलम से पूछा था कि मेरे और तुम्हारे बीच ये क्या दिख रहा है? शाह आलम ने जवाब दिया कि कुछ नहीं, केवल और केवल पवित्र कुरान की आयतें ही दिख रही हैं। जाहिर तौर पर, कुरान के नाम पर बचने की अंतिम कोशिश शाह आलम ने की लेकिन इस जवाब ने गुलाम कादिर को और ज्यादा खूंखार बना डाला। शाह आलम की चीखें पूरे लालकिले में गूंज उठी थीं। उधर शाह आलम के हरम में भयानक आलम था। कलेजे को कंपाता क्रंदन पसरा हुआ था, चारों ओर रुदन और छतों को भेदकर आसमान में गूंजता विलाप था, जमीन पर सर पटक-पटकर कर रोती-कलपती बूढ़ी माताओं, बेगमों-बेटियों का हाड़ कंपाता शोर। सबके वस्त्र और साज-श्रृंगार के आभूषणों-जेवरात तो गुलाम कादिर ने पहले ही उतरवा लिए थे। जो माताएं, बेवा बुजुर्ग, जवान बेगमें और शहज़ादियां सोने-चांदी और हीरों के जेवरात से सदा सजी-धजी लदी किले में दीवान-ए-खास से दीवान-ए-आम तक, और हरे भरे बागों, नहरों और फव्वारों के बीच चहकती और दमकती घूमती रहती थीं, उनकी इसी किले में ऐसी भयानक विडंबना होगी, नियति ने भी शायद यह तस्वीर देखने में शर्म से आंखें छुपा लीं। हरम से उठते इस करुण क्रंदन को कोई सुनने वाला, निर्दोषों को बचाने वाला, अत्याचार के खिलाफ उठकर बोलने वाला इस्लामिक योद्धा दिल्ली तो क्या मानो पूरी कायनात में ही नहीं दिख रहा था। गुलाम कादिर ने एक बार फिर से बादशाह शाहआलम और पूरे शाही परिवार को चेतावनी दी कि 24 घंटे में खजाने का पता नहीं बताया तो वह सबकुछ होगा जो अब तक मुगल खानदान के साथ नहीं हुआ है। उस रात गुलाम कादिर ने सारा करुण क्रंदन, विलाप और चीखें सुनते हुए मोती महल में ही गुजारीं। जबकि बाकी दिन वह रात गुजारने वहीं किले के भीतर रोहिलों की सुरक्षा वाले हयात बाग के अपने शिविर में चला जाता था। उसकी मानसिक हालत जबरा मारे और रोने भी न दे वाली हो चुकी थी। देर रात में महिलाओं की रोने की आवाजें जैसे ही वह सुनता, तो फुफकार उठता, रोहिले उसका संकेत पाते ही निर्दोष महिलाओं पर कोड़े फटकारने लगते। नंग धड़ंग बेगमों और शहजादियों के शरीर पर कोड़े बरसते देखकर उसका

पठान रोहिल्ले दल बना-बनाकर लालकिले से निकलते और दिन-रात लूटमार कर वापस लालकिले में इकट्ठा होकर सारी लूटी दौलत का हिसाब तैयार करते। इस लूट में गुलाम कादिर खान ने सुनहरी मस्जिद के गुंबज पर चढ़े सोने को भी उतरवा डाला। किले के भीतर मोती मस्जिद में सोने की नक्काशी समेत दीवाने खास, दीवाने आम के सारे कीमती फानूस, जवाहिरातों के नमूने, कलाकृतियां, सोने-चांदी की परतें सबकुछ उसने उतरवाकर मानो पूरे किले को ही बेआबरू कर डाला।

चेहरा खिल उठता। वह उन्हें उठते-भागते देखकर बचाने के लिए पुचकार पुचकार कर बुलाता और कभी कभी तो उनके झुंड के बीच ही इस तरह घुस जाता जैसे कोई खूंखार शेर हिरनों के बाड़े में घुसकर अपने रूप का गुरूर आंकने लगे। जैसे ही सुबह की पहली किरण फूटी, जामा मस्जिद से अजान की मद्धिम आवाज सुनाई पड़ी तो गुलाम कादिर का दिमाग और ज्यादा पागलपन से भर उठा। अल्लाह की दुहाई, रहम की भीख और कुरान की आयतों में डूबी बादशाह शाह आलम की लड़खड़ाती टूट टूटकर आती आवाजों से उसे और भी कोफ्त होने लगी। सूरज आसमान पर छाते हुए जैसे ही लालकिले के ऊपर आने लगा, गुलाम कादिर की क्रूरता का पारा भी उसी हिसाब से चढ़ता चला गया। उसने नए बादशाह बीदर बख्त को बुलाया और उसे लेकर सीधे शाह आलम के पास गया जहां बादशाह औंधे मुंह धरती पर गिरे पड़े कराह रहे थे। बीते 24 घंटे से उनके गले में पानी का एक भी घूंट नहीं गया था, खाने की सामग्री का तो सवाल ही नहीं। गुलाम कादिर खान ने बीदर बख्त से कहा कि आओ तुम्हें वो दिखाता हूं जो तुमने अभी तक देखा न होगा। मुल्क के बादशाह हो तो जरा इसे भी सीख लो, वैसे ये सब कुछ इसी लालकिले ने ही मुझे सिखाया है। सर नीचा किए बीदर बख्त सुनता रहा। गुलाम कादिर ने झुककर शाह आलम से धीरे से पूछा कि बता दे किले में हीरे, जेवरात, खजाना कहां छुपा रखा है नहीं तो तुझे अभी जहन्नम पहुंचा दूंगा। आंखों के सामने छाए अंधेरे में से कुछ देखने की कोशिश करते हुए शाह आलम गुलाम कादिर के पैरों को टटोलते हुए बैठ गए। उन्होंने उसे धिक्कारते हुए कहा कि तेरे कर्मों की सजा ऊपरवाला जरुर देगा। तू मेरी गर्दन काट दे, मेरे पास तुझे देने के लिए कुछ भी नहीं है सिवाय इन सांसों के। इस तरह जीने से अच्छा है मर जाना। तू मुझे मार डाल। या मेरे हाथों में कटार थमा दे, मैं खुद ही जिंदगी खत्म कर लेता हूं। न मैं रहूंगा और ना ही तू मुझसे कुछ मांगेगा। शाह आलम की धिक्कार सुनकर गुलाम कादिर पागल हो उठा। उसने बादशाह के नंगे सीने पर कसकर लात मारी। शाह आलम पीठ के बल धड़ाम से जमीन पर लुढ़क पड़े। इतिहास के स्त्रोतों के अनुसार, उसने रोहिले सरदार कान्धारी खान और पुर्दिल खान को हुक्म दिया कि बादशाह के दोनो हाथ पीछे बांध दिए जाएं। इसके बाद जो हुआ उसे देखकर नया नवेला बादशाह बीदर बख्त भी कांपते-चिल्लाते बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। शाह आलम की आंखों कों फौरन गुलाम कादिर खान ने अपने अफगानी खंजर की नोक को भीतर घुसाकर बाहर खींच लिया। दूसरी आंख कांधारी खान ने खंजर घोंपकर नेत्रगोलक से बाहर काटकर फेंक दी। शाह आलम उस मुर्गे की माफिक जमीन पर गिरकर तड़पने लगा जिसकी गर्दन काट दी गई हो। गुलाम कादिर खान यहीं नहीं रुका। उसने रोहिलों को फौरन आदेश दिया कि सबसे बड़े तीनों शहजादों प्रिंस अकबर, सुलेमान और अहसान बख्त की आंखें सलाकें भोंककर फोड़ दी जाएं। शाह आलम की चीखें सुनकर नंग धड़ंग बेगमें जो बाहर से सब कराहते हुए देख रही थीं, उन्होंने शहजादों की आंखे फोड़ने के फरमान सुनते ही फिर से आसमानों को कंपाता दहाड़ मारकर रोना शुरु कर दिया। प्यारी बेगम, बेगम ताजमहल, जमील-उन्निसा बेगम, बेगम मुबारक महल, बेगम मुराद बख्त समेत हरम में मौजूद शाही महिलाएं रोते कलपते गुलाम कादिर खान के पैरों में गिर पड़ीं और शहजादों पर रहम करने के लिए अल्लाह की दुहाई देने लगीं। गुलाम कादिर ने बेगमों को पैरों तले रौंद डाला। उन्हें लात मारते हुए वह उनके बीच से निकल गया और तीनों बड़े शहजादों के हाथ बांधकर पेश करने का आदेश दिया। फिर उसने हुक्म जारी किया इन शहजादों पर तबतक कोड़े बरसाते रहो जबतक कि ये बेहोश न हो जाएं, कोड़े बरसा बरसा कर बेहोश कर इन्हें दोबारा कैद में डाल दो। उसने फिर किले में मौजूद सबसे बढ़िया रंगसाज चित्रकार को बुलाने का हुक्म दिया। उसके आने पर उसने कहा कि शाह आलम की छाती पर उसकी आंखों को निकालने का रेखाचित्र बना दिया जाए। फिर वो नौकरों को ये हुक्म देकर चला गया कि बादशाह समेत शाही परिवार के किसी भी सदस्य को खाना-पानी कोई देने की जुर्रत भी न करे।

दस्तावेजों के अनुसार, उस रात बादशाह के समर्पित नौकर, सेवक, सेविकाएं और खानसामे देर तक रोते रहे। बादशाह की आंखे निकाली जा चुकीं थीं लेकिन प्राण बाकी थे। खून और अंधेरे में डूब चुके शाह आलम देर रात तक बार-बार पानी पानी की गुहार लगाते रहे। खानसामों में से पांच नौकरों ने मौका देखकर देर रात शाह आलम की प्यास बुझाने की कोशिश की। लेकिन पांचों पकड़ लिए गए। सुबह गुलाम कादिर खान के सामने पांचों पेश किए गए तो गुलाम ने पाचों को बादशाह के कमरे में ही मारकर लाशें वहीं छोड़ देने का आदेश जारी कर दिया। पांचों को मार दिया गया और जमीन पर तड़पते बादशाह के इर्द-गिर्द लाशें डाल दी गईं।

25 अगस्त 1788

शाह आलम पर कहर बरपाने के बाद गुलाम कादिर खान ने दूसरे शहजादों की ओर रुख किया। प्रिंस अकबर शाह और उनके बेटे बहादुर शाह जफर (उम्र 13 साल) समेत सारे शहजादों को रोहिल्ले सरदारों के बीच नाचने-गाने पर मजबूर कर दिया गया। रोहिल्ले सरदार ढपली बजाते और उसकी धुन पर रोते-बिलखते शहजादों को नचाते। उसने बीदर बख्त की नानी मलिका ए जमानी को किए गए वायदे के मुताबिक 12 लाख रुपये और दूसरे उपहारों का बंदोबस्त न कर पाने के लिए वस्त्रहीन नंगे बदन धूप में खड़ा कर दिया। किसी भी बेगम-शहजादी और शहजादों को दाना-पानी की भी सख्त मनाही हो गई। अगस्त 1788 के आखिरी पूरे हफ्ते लालकिले से चीत्कार ही चीत्कार दिल्ली के आसमान में गूंजती रही। रोंगटे खड़े कर देने वाले अत्याचार एक-एक कर गुलाम कादिर खान ने मुगलवंश पर बरपाए। शाही परिवार की सभी बेगमों, महिलाओं, शहजादियों के ऊपर जुल्मोसितम की वो दारुण विपदा बरसी कि कोई कलम उसे लिख भी नहीं सकती। किले में दौड़ा दौड़ाकर कोड़े

बरसा-बरसा कर वस्त्रहीन मुगल बेगमों को गुलाम कादिर के वहशी कारिंदों ने पीटा, बारी-बारी सभी के साथ बलात्कार हुआ।

भूख से तड़प-तड़प कर कई मासूम शहजादों ने जान दे दी। कई तो इस भयानक जुल्मोसितम से जान बचाने के लिए बाढ़ में उफनाई यमुना से कूद पड़े और डूबकर मरने को मजबूर हो गए। नवेला बादशाह बीदर बख्त यह देख-देख कर जार जार रो रहा था। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि जिस सत्ता को पाने के लिए वह अपने मुल्क से गद्दारीकर गुलाम कादिर खान को न्यौता देने जा रहा है, उसी मुल्क के सबसे बड़ा शाही परिवार का उसी की नाम भर की बादशाहत में यह बुरा हाल हो जाएगा। बीदर बख्त ने गुलाम कादिर खान को झकझोरा कि ऐसा तो कोई अपने दुश्मनों के साथ भी नहीं करता तो कादिर जवाब देता, इसीलिए तो कर रहा हूं ताकि जहांपनाह तुम कुछ सीख सको कि सियासत कैसे की जाती है। वह बार-बार अपने परिवार पर ढाए गए जुल्मों की याद दिलाता और कहता कि जो नजफ खान ने इस शाह आलम के कहने पर उसके परिवार के साथ किया था, यह जुल्म तो उस जुल्म के सामने कुछ भी नहीं है। यह सारा तो उसने इसी मुगल सल्तनत से विरासत के रूप में पाया है सो वह उसे शाही परिवार को उसी रूप में वापस लौटा रहा है। उसने बीदर बख्त से कहा कि वह सारी मुगल शहजादियों, बेगमों को उसी प्रकार अपने किले नजीबाबाद ले जाएगा जैसे कि उसके परिवार को नजफ खान लालकिले मे शाही कैद में लाया था।

उस समय के इस भयानक ब्यौरे को लिखने वाले मुगल लेखकों के अनुसार, मुगल वंश के इतिहास में लालकिले के भीतर जो कुछ गुलाम कादिर खान ने घटित किया, उसे सुनकर, देखकर पूरी दिल्ली ही जार-जार रोने लगी जो कि पहले से ही अपनों के खोने और सबकुछ लुट जाने के गम से ग़मज़दा थी। जिसने सुना उसका ही कलेजा विदीर्ण हो गया, आंखें पथरा गईं। जिसने भी बादशाह शाह आलम की रूई और दवा भरी शून्य में ताकतीं अंधेरी आंखों को बाद में देखा, वह दहाड़ मार-मार कर रोने लगा। सारी सियासत ही जैसे छितरा गई थीं, मुगलवंश का खुदा भी जैसे खुद से बेखबर होकर इस नृशंसता से आंखे चुरा गया था।

5 सितंबर, 1788 के आखिरी दिनों में जब आगरा का बागी सूबेदार इस्माइल बेग मराठा टुकड़ी को भ्रमित कर लालकिले पहुंचा तो उसने जो देखा तो वह भी अपने आंसू रोक नहीं सका। बादशाह शाह आलम को देखते ही उसका गला रुंध गया, पैर कांपने लगे। लालकिले के मंजर को देखकर वह और उसके साथी कांप उठे। उसके पास इतनी शक्ति भी नहीं बची कि वह गुलाम कादिर को कुछ बोलता। उसकी आंखें शर्म से भर आईं, जिस लालकिले ने उसे कभी सबकुछ दिया था, उस लालकिले का सबकुछ इस तरह लुट जाएगा, इसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। किले के भीतर दहाड़ मारती रोती महिलाओं को देख-देख कर उसकी मानवता भीतर से जाग उठी। वह गुलाम कादिर से मिला तो कादिर ने उसे नग्न शहजादियों में से पसंद की शहजादी चुन लेने का प्रस्ताव दिया। वह शहजादियों की दशा देखकर भीतर से हिल गया। वह योद्धा था इसलिए मौके की नज़ाकत भांपकर गुलाम कादिर से बाद में मिलने का बहाना बनाकर किले से बाहर निकल गया।

15 सितंबर 1788

लालकिले में घटित लोमहर्षक और कंपा देने वाली पूरी जानकारी अब दिल्ली में फैल चुकी थी। मॉनसून की बाढ़ उतर गई थी और मालवा से लौटकर बाढ़ में फंसे महादजी शिंदे को सारे अत्याचार का सिलसिलेवार ब्यौरा गुप्तचरों के जरिए मिल चुका था। वह बिजली की गति से अपने पूरे सैन्यदल-बल के साथ दिल्ली की ओर बढ़ चले। महादजी के सेना सहित दिल्ली की ओर बढ़ने का समाचार जैसे ही गुलाम कादिर खान को मिला उसने भी सभी शहजादियों और सभी जीवित शहजादों जिसमें प्रिंस अकबर और बहादुर शाह जफर और नवेला बादशाह बीदर बख्त भी शामिल थे, सभी को बंधक बनाकर अपने खूंखार योद्धाओं के दल के साथ लालकिले से चलता बना। जो दौलत दिल्ली और लालकिले से उसने बटोरी थी, उसे उसने पहले ही अपने सैनिकों के जरिए नजीबाबाद भिजवा दिया था। जाते-जाते उसने लालकिले के बारुदखाने में आग लगवा दी। किले के भीतर हिस्सों तक बारुदी जखीरे बिछाकर कुछ इस तरह साजिश रची गई कि पूरा किला ही जलकर राख के ढेर में बदल जाए। इधर गुलाम कादिर खान ने लालकिला से पलायन किया, वहीं दूसरी ओर किले के भीतर का हिस्सा बम धमाकों की आवाजों से थर्रा उठा। चारों ओर धुआं, आग, बमों के फटने की आवाजें, कोई भी किले की ओर देखने की हिम्मत नहीं जुटा रहा था, भीतर घुसकर किसी को बचाने की कौन कहे। इतिहास के कुछ दूसरे स्त्रोतों के अनुसार, गुलाम कादिर खान 2 अक्टूबर 1788 तक किले में ही एक सैन्य टुकड़ी के साथ छुपा रहा। हालांकि इसके पहले सारी लूटी दौलत और शहजादे, शहजादियों को बंधक बनाकर उसने बारी-बारी से नजीबाबाद और दूसरे ठिकानों पर भेजना शुरु कर दिया था। वह वेष बदलकर उस समय किले से बाहर भागा जबकि मराठा सैन्यदल मुख्य द्वार से भीतर घुसने की कोशिश में जुटा था। इसी समय उसने बारुदखाने समेत किले में चारों ओर से आग लगवा दी ताकि सबकुछ जलकर भस्म हो जाए और मराठा सैन्यदल को भी तगड़ा नुकसान हो सके। 21 सितंबर 1788 को जब मराठा फौज शहादरे से यमुना पारकर लालकिले की ओर दाखिल हो रही थी तब तक गुलाम कादिर खान ज्यादातर लूटी दौलत अपने सुरक्षित ठिकाने नजीबाबाद पहुंचा चुका था। शहादरे में मराठा फौज को सबसे पहले अनूप गिरी समेत घुड़सवार फौज मिली, अनूप गिरी महादजी के चरणों में गिर पड़ा और अपनी गलती स्वीकार करते हुए उसने सारी घटना बयां कर दी।

29-30 सितंबर 1788

मराठा सेना लालकिले को घेर चुकी थी। किले का मुख्य दरवाजा

भीतर से बंद था जिसे खोलने के लिए मराठा सेना को खासी मशक्कत करनी पड़ी। गुलाम कादिर खान जाते-जाते ऐसा कर गया था कि किले की आग में सबकुछ स्वाहा हो जाए और बादशाह समेत सभी बूढी-बुजुर्ग महिलाएं, सेविकाएं, नौकर-चाकर, सड़ती लाशें सब कुछ जलकर खत्म हो जाए।

1-2 अक्टूबर 1788

अनूप गिरी ने किसी तरह से रस्से के जरिए अपने योद्धाओं को किले पर चढ़वाकर भीतर से बंद मुख्य दरवाजे को खोलने का बंदोबस्त कराया। किले में सबसे पहले उसी की अगुवाई में मराठा सैन्य टुकड़ी दाखिल हुई। महादजी शिंदे मराठा सैन्य दल के साथ किले में घुसे तो चारों ओर भस्मीभूत मंजर देखकर हर कोई दहल उठा। बुढ़ी बुजुर्ग महिलाएं तो पहले आगे बढ़ने से डरीं और जाकर अपने अंधेरों में सिमट गईं, उनके चेहरों पर मौत की कालिख और बरपाए अत्याचारों का मंजर देखकर मराठा सैनिक भी थर्रा उठे। महादजी के लेफ्टिनेंट राणे खान सबसे पहले बादशाह शाह आलम के पास पहुंचे और उनकी हालत देखकर बिलखने लगे। बादशाह धुएं और कालिख से भरे कमरे के एक कोने में पड़े-पड़े जीवन से करीब-करीब हार मान चुके थे। सांसे चल रही थीं, आंखें शून्य में थीं, चेहरे पर प्रवाहित खून सूखकर काला पड़ गया था। जुबां पर केवल कराहने की बुदबुदाहट बची थी। राणे खान ने जैसे ही सैन्य दल के साथ आए वैद्य को उनके रिक्त नेत्रगोलक और दूसरे घावों की मरहम पट्टी करने के लिए उनके समीप बुलाया तो बादशाह के चेहरे पर मृत्युकारी रुदन तैरने लगा। उन्हें महसूस हो चुका था कि मराठी सैन्य दल आ चुका है। उन्होंने वैद्य के हाथों को अपने से परे ढकेलते हुए कहा कि भूख से तड़प-तड़पकर मेरे कितने ही बच्चे मारे गए, मेरी बेगमों, मेरी बेटियों की दुर्दशा हो गई। मेरे शहजादे कहां गए, मुझे नहीं पता। अब किसी की आवाज मुझे सुनाई नहीं देती। तुम लोग अब आए हो, अब तो मुझे केवल मौत का इंतजार है, अब मुझे किसी का इंतजार नहीं है।

बादशाह और किले की हालत देखकर महादजी शिंदे भी अपने आंसू रोक नहीं सके। बादशाह के चरणों के पास बैठकर वह भी बिलख उठे। क्या सोचा था और क्या हो गया? लेकिन पलक झपकते ही महादजी ने अपने आंसुओं को पोछ डाला। पहला आदेश उनकी जुबां से निकला- मुझे गुलाम कादिर खान हर कीमत पर चाहिए, मुर्दा नहीं जिंदा चाहिए। सारे जीवित शहजादों को बिना कोई नुकसान पहुंचे मुझे गुलाम कादिर खान चाहिए। राणे खान, जीवबाजी बख्शी, फ्रांसीसी कमांडर डी बोईंग और राया पाटिल की अगुवाई में मराठा सैन्य टुकड़ियों को यह जिम्मेदारी सौंपी कि मुल्क के चाहे जिस हिस्से में गुलाम कादिर और उसके योद्धा छुपे हों, उन्हें ढूंढ निकालो। मुझे हर कीमत पर जीवित गुलाम कादिर चाहिए।

बादशाह को अपने कंधों का सहारा देकर महादजी ने उठाया और गोद में उठाकर उन्हें सुरक्षित इंतजाम की ओर पहुंचा दिया गया। किले में जीवित बची सभी महिलाओं के वस्त्र आदि का प्रबंध हुआ, सबके भोजन-पानी की व्यवस्था हुई। अक्टूबर महीने के आखिरी सप्ताह में दोबारा बादशाह शाह आलम को तख्त पर आसीन किया गया।

20 अक्टूबर 1788

मराठों के भय से नजीबाबाद छोड़कर फरार गुलाम कादिर खान अलीगढ़ में छुप गया। अलीगढ़ पर जैसे ही मराठों ने धावा बोला, गुलाम कादिर ने मेरठ के किले में शरण ले ली जहां उसके 15000 योद्धा और 100 से अधिक बंदूक धारी सैनिक भी मोर्चा जमाए थे। रायाजी पाटिल के नेतृत्व में मराठों ने मेरठ किले के चारों ओर मोर्चा संभाल लिया। डेढ़ महीने तक किले की घेरेबंदी जारी रही। कुछ उपाय न देखकर गुलाम कादिर खान ने रायाजी पाटिल के साथ सुलह की बातचीत शुरु कर दी। इसी बातचीत को जरिया बनाकर एक दिन गुलाम कादिर खान अपने 500 चुने हुए योद्धाओं के साथ फिर से वेष बदलकर मेरठ से भाग निकला और वर्तमान मुजफ्फरनगर के गौसगढ़ इलाके के जंगलों में छुप गया। राया पाटिल और जीवबा बख्शी ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। भागते भागते आखिरकार गुलाम कादिर खान अपने सभी सैनिकों के साथ बारी-बारी कर बिछुड़ता चला गया।

दिसंबर 1788

दिसंबर की एक बरसाती रात में राया पाटिल और जीवबा बख्शी गुलाम कादिर खान को पैदल ही दौड़ाने लगे। वह कीचड़ भरे रास्तों से भागते भागते अचानक अपने साथियों को भी खो बैठा। राया पाटिल और जीवबा ने उसके सारे लड़ाकों को मौत के घाट उतार दिया। दोनों चाहते तो गुलाम कादिर को भी मार डालते लेकिन उसे जीवित पकड़कर लाने का महादजी शिंदे के आदेश का अक्षरशः पालन जरुरी था। दोनों ने उसे अकेले भागने दिया और खामोशी से उसके रास्ते का अपनी पूरी टुकड़ी के साथ पीछा करते रहे। मेरठ से करीब 24 मील दूर बमनौली गांव के आस-पास उसने एक गरीब ब्राह्मण के घर में छुपकर शरण ले ली। किसी को भी बताने पर उसने ब्राह्मण के मासूम बच्चों और पत्नी को मौत के घाट उतार देने की धमकी देकर पूरे परिवार को बंधक बना लिया।

उस लाचार ब्राह्मण ने पहले तो जुबान सिल ली लेकिन ज्यों ही उसे पता चला कि घर में जबरन घुसकर छुपा सर्प कोई ऐरा गैरा नहीं बल्कि कुख्यात गुलाम कादिर खान ही है तो उसके होश उड़ गए। क्रूरता वैसे भी गुलाम कादिर खान के नस नस में समायी थी, उसने कुछ दिन तो अपने दुश्चरित्र को काबू में रखा लेकिन जब उसे लगा कि मराठा योद्धा अब रास्ता भटक चुके हैं और उसके बारे में किसी को खबर नहीं है तो उसने धीरे-धीरे ब्राह्मण परिवार के ऊपर वो सारे अत्याचार ढाने शुरू कर दिए जिसकी लत उसे लगी हुई थी। हर अत्याचार करते समय वह उस गरीब ब्राह्मण को यही धमकी देकर

खामोश रहने को कहता कि अगर किसी को बताया तो पूरे परिवार को खत्म कर देगा। गरीब ब्राह्मण की आत्मा कलप उठी।

एक दिन किसी काम के बहाने वह ब्राह्मण घर से निकला तो उसने तय कर लिया कि उस राक्षस से मुक्ति पाकर ही रहेगा। ब्राह्मण ने चुपचाप सारा मामला मराठों के करीबी एक योद्धा को सूचित कर दिया और यह भी बता दिया कि उसकी और उसके परिवार की जान खतरे में है, जरा सी लापरवाही से न केवल गुलाम कादिर खान भाग निकलेगा बल्कि उसे उसके परिवार से भी हाथ धोना पड़ेगा। बमनौली गांव के सूत्र ने यह खबर सिपहसालार अली बहादुर तक पहुंचा दी जो खुद मराठा योद्धाओं के साथ चप्पे-चप्पे की खाक गुलाम कादिर को पकड़ने के लिए छान रहे थे। 19 दिसंबर 1788 की सोई रात को अचानक अली बहादुर, राया पाटिल और जीवबा ने अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ बमनौली गांव के उस ब्राह्मण के घर पर छापा मारा। ब्राह्मण तो पहले से ही जान बचाने के लिए पूरे परिवार को लेकर भागने के लिए सावधान था। दस्तावेजों के मुताबिक, मराठों की छापामार योजना में गुलाम कादिर खान तो जीवित चंगुल में आ गया लेकिन उसने पंडित के परिवार के एक मासूम को मराठों की कैद मे जाने से पहले हमेशा के लिए मौत की नींद सुला दिया।

31 दिसंबर 1788

गुलाम कादिर खान की निशानदेही पर दूसरे रोहिले सरदार और उसके सहयोगी भी मराठा योद्धाओं ने धर दबोचे। गुलाम कादिर खान को उसके तमाम सहयोगियों समेत लोहे की सिकड़ से बने एक पिंजरे में डालकर एक बैलगाड़ी पर लादकर पूरे सुरक्षित लाव-लश्कर के साथ मथुरा ले जाया गया जहां किले मे बैठकर स्वयं महादजी शिंदे पूरे छापामार अभियान की निगरानी कर रहे थे। महादजी शिंदे ने गुलाम कादिर खान को थर्ड डिग्री दंड देकर सभी शहजादों और शहजादियों की सुरक्षित रिहाई का रास्ता बनाया और जो भी खजाना दिल्ली और किले को लूटकर उसने जहां-जहां छिपाया था, उससे पूरे खजाने की योजनापूर्वक बरामदगी भी कराई।

इसके बाद बादशाह शाह आलम के चिकित्सक और दरबारी हकीम अकमल और सचिव मीर गालिब अली के साथ उसे दो हजार घुड़सवार मराठा योद्धाओं की कड़ी निगरानी में एक पिंजरे में लोहे की जंजीरों में जकड़कर दिल्ली लाया गया। जहां महादजी के आदेश से गुलाम कादिर खान के कान काटकर उसकी गर्दनों पर लटका दिए गए। उसका चेहरा काला कर उसे श्मशान के ढेर में दहकती दिल्ली में चारों ओर घुमाया गया। दूसरे दिन गुलाम कादिर खान की नाक काट दी गई, उसकी जुबान बाहर खींच ली गई, ऊपरी होंठ के हिस्से काटकर उसका चेहरा डरावना बना दिया गया। उसे इसी हालत में दोबारा दिल्ली में चौराहे-चौराहे घुमाया गया और फिर उसे निढाल हालत में अंधे बादशाह शाह आलम के पैरों तले डाल दिया गया।

3 मार्च 1789

महादजी शिंदे ने बादशाह शाह आलम से हिसाब बराबर करने की दरख्वास्त की और गुलाम कादिर खान की मौत की सजा के लिए अंतिम हुक्म देने की प्रार्थना की। इतिहास स्रोतों के मुताबिक, बादशाह ने जैसे ही कहा कि इसने जिस तरह के दुष्कर्म किए हैं, अल्लाह भी इसके साथ वैसे ही इंसाफ करेगा, वैसे ही बादशाह के सम्मुख उसी दीवान-ए-आम में जहां गुलाम कादिर खान ने तड़पा तड़पाकर उनकी आंखे काटकर निकाल दी थीं, ठीक उसी जगह पर मुगलिया सैनिकों ने भी उसकी आंखें उसके नेत्रगोलक से काटकर बाहर निकाल दीं। उसकी आंखों से रिस रहा गरम रक्त बादशाह की हथेली पर रख दिया गया। उसकी चीखें और चिल्लाहट सुनकर फिर से वो भयावह मंजर सारी तस्वीरें उस दीवान-ए-खास में ताजा हो उठीं जो उसने 6 महीने पहले खुद ही उकेरीं थीं। सैनिकों ने इसके बाद उसके हाथ काट डाले, पैरों को भी काट डाला, उसकी बोटी-बोटी काट डाली गई, सबसे अंत में उसकी गर्दन धड़ से बादशाह की मौजूदगी में अलग कर दी गई। बादशाह के आदेश पर गुलाम कादिर खान की सर कटी लाश लालकिले के बाहर एक दरख्त से लटका दी गई। दस्तावेजों के मुताबिक, उसकी कटी गर्दन उस पेड़ से नीचे की ओर लटकती रही। इसे देखकर एक भयानक काला कुत्ता कहीं से उस जगह पर आकर बैठ गया, और जमीं पर रिसकर गिरते उसके रक्त को चाटने लगा। अगले दिन सुबह-सुबह लोग जब उस जगह पर आए तो उसकी गर्दन कटी लाश नदारद थी। लोगों ने देखा कि दूर वह काला कुत्ता मांस चिचोरता हुआ चला जा रहा था, सुनहरी मस्जिद के पास मोड़ पर वो हर किसी की आंखों से ओझल हो गया। फिर उस काले कुत्ते को किसी ने नहीं देखा, वहीं जामा मस्जिद के पास के चौराहे पर संभवतः गुलाम कादिर की लाश के कुछ टुकड़े दूसरे कुत्ते मुंह मे दबाए एक दूसरे से छीना-झपटी कर रहे थे।

कहते हैं कि दिल्ली के राजनीतिक आसमान पर उस वक्त छाए काले बादलों का अंत इसी काले कुत्ते ने किया। उस रात को हर हिन्दू की जुबां पर यही चर्चा थी- **मानो यमराज खुद चले आए थे उस राक्षस को दंड देने। जो जैसा पापकर्म करेगा वो उसी पाप की आग मे ही जलकर मरेगा।** दूसरी ओर जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे मुसलमान कह रहे थे - **अपने मुल्क से गद्दारी करने की यही सजा होती है। महादजी और उनके वीर मराठे न होते तो मुगल वंश का खात्मा ही हुआ था समझो।**

सन्दर्भः
हिस्ट्री ऑफ द मराठाः जीएस सरदेसाई
राइज ऑफ द पेशवाः डॉएच एन सिन्हा
द मुगल एंपायरः आरसी मजुमदार, भारतीय विद्या भवन
द मराठा सुप्रीमेसीः आरसी मजुमदार, भारतीय विद्या भवन
फाल ऑफ द मुगल एंपायरः डॉ। यदुनाथ सरकार
पेशवा बाजीराव एंड द मराठा एक्सपेंशनः डॉवीजी दीघे
द एनार्कीः इस्ट इंडिया कंपनी एंड कॉरपोरेट वायलेंस, विलियम डेलरिंपल

हम किधर जा रहे हैं?

विक्रमादित्य सिंह

वर्तमान हमारे इतिहास से अनेक प्रश्न पूछ रहा है और उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है। भविष्य के लिए जिन प्रश्नों के उत्तर आवश्यक है, वह प्रश्न आज हमारे सामने खड़े हो चुके हैं? सवाल और उसके जवाब में एक द्वन्द दिखता है। जिन्हें इतिहास की और स्व की अनुभूति है, जो स्व के दर्पण में इतिहास को देखते हैं, अपनी अनुभूति के जो रचयिता हैं, भाग्यविधाता हैं, जो अपने कर्मों के परिणाम के निष्पादक हैं, वह इतिहास समुद्र के इस मंथन से निश्चित रूप से अमृत प्राप्त करेंगे।

युवा लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता एवं संस्कृति पर्व के समन्वय संपादक हैं।

समय सबसे बलवान, पर उड़ता जाए जैसे सिंहपर्णी हो हवा में...।

हम और हमारा इतिहास इसी समय के मोहताज हैं। समय हमारी शरण में नहीं बल्कि हम इसकी शरण में हैं। संसार का समय चक्र हमारे कर्मों के आधार पर बदलता है। आज का कर्म कल का सारथी है जो बीते कल में संभावित भविष्य का दर्पण भी होता है। इस बीते कल से, इतिहास से उत्पन्न पथ को समझना एवं परखना किसी भी समाज के लिए शायद जटिल, किन्तु अति आवश्यक है।

जिन सूत्रों के जरिए हम इतिहास को देखते हैं, उनके प्रकाश में आज की सामाजिक अवस्था भी समझी जा सकती है, यह स्वयंसिद्ध है। इतिहास इसलिए एक दृश्य है, जिसे ईमानदारी से सजाया जाना आवश्यक है। सूत्र शब्द यहां केंद्रीय भूमिका में है। दूसरा, हमारे कर्म हैं। कर्मों की उत्पत्ति हमारे विवेक से होती है। हमारे विवेक में इच्छाशक्ति का बल जुड़कर हमारे कर्म की निर्मिति का कारण बनता है। समय, ब्रह्म या संसार कहें, हमसे संकेतों और सूत्रों में बात करता है। जैसे भगवान कृष्ण महाभारत का समापन स्वयं कर सकते थे, किन्तु उन्होंने उसमें सीधे कोई हस्तक्षेप नहीं किया। वैसे हम आज एक दोराहे पर आकर खड़े हैं। हमें आगे का मार्ग अतीत की घटनाओं से सीख लेकर और अपने विवेक के साथ वार्ता करते हुए वर्तमान के संकेतों और सूत्रों को समझते हुए ही करना है।

अयोध्या के गर्भ से निकल रहे पुरातात्विक अवशेषों की पुकार आज फिर से क्यों सुनाई देने लगी है? सैकड़ों वर्षों की सांप्रदायिक हिंसा और उपद्रव का चक्रव्यूह अयोध्या में आकर बुझ गया है। आज ही क्यों यह स्थिति आई है? कश्मीर घाटी से जो पलायन को मजबूर हुए, आज उनके दिलों में उम्मीद की नई रोशनी जगी है। आज ही क्यों जगी है? समय स्वयं सकारात्मक परिवर्तन का संकेत दे रहा है। एक तरफ प्रशासनिक, नैतिक दृष्टि से उचित निर्णय हुए हैं, जिन्हें स्वाभिमान और न्याय की तुला पर तोला जाए तो भी वह खरे दिखाई देते हैं। दूसरी ओर इतिहास के साथ जो सुनियोजित छेड़खानी और खिलवाड़ किया गया, वह भी आज बेपर्दा होता संसार को दिख गया है।

एक अदृश्य परन्तु व्यापक तंत्र अपने निशान दिल्ली के दंगों से लेकर मुंबई और बैंगलुरु की हिंसा तक छोड़ गया है। इसकी भुजाओं का विस्तार कहां तक है? यह कब से पल और बढ़ रहा है? यह और कितने विनाश

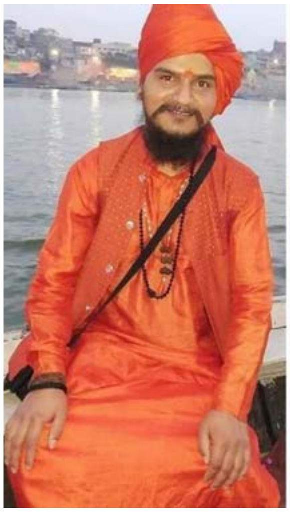

का कारण बनेगा? इसे समझने के लिए हमें जागृत होना होगा, समय के संकेतों को समझना होगा और भविष्य पर इस काली छाया को पड़ने से पहले इसे रोकने या इसे समाप्त करने का उपाय तो खोजना ही होगा।

इस हिंसक तंत्र की भुजाएं कभी किसी चलचित्र का रूप लेंगी, हमें लुभाएंगी, कभी मीडिया के जरिए अपना रूप दिखाएंगी. हमारा सम्मान हासिल करने की कोशिश करेंगी तो कभी मानवाधिकारों का चोगा पहनकर हमें अपने वास्तविक रूप के प्रति अनेक प्रकार के भ्रमजाल में उलझाने का भी प्रयास करेंगी। हमें सही और गलत की पहचान करना सीखना होगा। वसुधैव कुटुम्बकम के मूल्यों के आधार पर हमें मानवता के प्रति अपने सनातन दृष्टिकोण पर विश्वास और अधिक जमाना ही होगा।

हमें इनके पर्यायवाची ढूंढने दूर नहीं जाना है। दिल्ली के दंगों ने सब स्पष्ट कर दिया है कि क्या हो रहा है, कौन कर रहा है और मीडिया के जरिए क्या बताया और दिखाया जा रहा है। जब एक बंदूकधारी भगवा आतंकवादी और दूसरा जिंदादिल प्रदर्शनकारी में परिवर्तित हो जाए तो और क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है। पड़ोसी देशों में उत्पीड़न के शिकार सताए गए लोगों को भारत में नागरिकता देने के मुद्दे को नागरिकता छीन लिए जाने के बराबर बताया जा रहा है तो प्रश्न केवल उन्हीं पर क्यों खड़े किए जाते हैं जो इस दोहरे चरित्र वाले समूह के खिलाफ बोलते हुए उठ खड़े होने को बाध्य हैं? यह कैसा खेल है? इसका दोमुंहा रूप पालघर कांड, महाराष्ट्र में देखने को मिला जहां दोगलापन स्पष्ट हो गया कि संतों की हत्या के जिम्मेदार पुलिसकर्मियों को लेकर उन किलों से कोई आवाज नहीं आई जो हमेशा ही पुलिस को वर्दी में गुंडों का गिरोह बताते नारे लगाते घूमते अक्सर दिखाई देते हैं। किसी समाचार संगठन का पूंजी स्त्रोत कहां है, यह इस गिरोह के लिए कोई मायने नहीं रखता, चाहे उस स्त्रोत की भावना सदा ही भारत और उसके मूल्यों, उसके सनातन स्वरूप के विरुद्ध हो या फिर पाकिस्तान अथवा चीनपरस्त। भारत में पाकिस्तान और चीन का संकेत पाकर अनेक प्रकार का विभाजनकारी एजेंडा चला रहे लोगों को पहचानने की आवश्यकता है जिन्हें वैसे तो भारतीय मूल्यों, संस्कारों, सनातन रीति-रिवाजों से कोई मतलब नहीं होता किन्तु मामला अगर महिलाओं के मंदिर प्रवेश का हो और उससे कोई परंपरा टूटती हो तो वो पूरी ताकत से उसे तोड़ने में जुटे जाते हैं और जैसे ही कब्रिस्तान में महिलाओं के जाने का मामला सामने आता हो, या किसी दरगाह या मस्जिद में प्रवेश का सवाल हो या फिर महिलाओं की गरिमा, उनके साथ हलाला, तलाक आदि के गंभीर जीवन से जुड़े सवाल सामने आते हों तो ये समूह फौरन ही चादर तानकर अपनी गुफाओं में सो जाते हैं। इस प्रकार दोहरे मापदंड लेकर भारत में एजेंडा चला रहे समूहों को इतिहास के अक्स से उनके वास्तविक रूप में देखने की आवश्यकता है कि वास्तव में ये कौन हैं, क्या चाहते हैं और किसके हितों की पूर्ति में जुटे हैं?

इन दोमुंहे समूहों के कर्मों का परिणाम हमारे सामने है। इनके नए प्रयास संकेत रूप में सबकुछ समझाते हैं। इस प्रकार हमें इन्हें देखना होगा। किन्तु इसी के साथ भारतीय सनातन परंपरा और इतिहास में जो कुछ सकारात्मक है उसे भी हमें गहराई से तलाशना होगा। सकारात्मकता की राह पर अपने देश के अतीत से प्रेरणा लेकर उसके भविष्य की इबारत हमें लिखनी, पढ़नी और गढ़नी होगी। इसी में से नया इतिहास करवट लेता दिख रहा है। हमारी सामूहिक अनुभूति हमारा सामूहिक सत्य बनने को तत्पर है। पराविद्या के ज्ञान का मानवीकरण से गहरा नाता है। इस अदृश्य सूत्र का प्रतिबिम्ब हमारे पाठ्यक्रम में परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप में भी मिलता है। एक देश के इतिहास का सबसे मौलिक प्रश्न यही है कि हमारा देश एक राष्ट्र था भी या नहीं था? क्या वह आज भी एक राष्ट्र बन सका है कि नहीं बन सका है? क्या हम विदेशी प्रभाव और विदेशी मान्यताओं के अनुसार, उनकी शब्दावली और परंपरा के अनुसार राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में हैं? हमें स्वतंत्रता के समय बताया गया कि ए नेशन इज इन मेकिंग प्रोसेस? क्या भारतीय इतिहास के पाठ्यक्रम में और असल दस्तावेजों में भारत प्राचीन काल से एक राष्ट्र नहीं है?

वर्तमान हमारे इतिहास से अनेक प्रश्न पूछ रहा है और उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है। भविष्य के लिए जिन प्रश्नों के उत्तर आवश्यक है, वह प्रश्न आज हमारे सामने खड़े हो चुके हैं? सवाल और उसके जवाब में एक द्वन्द दिखता है। जिन्हें इतिहास की और स्व की अनुभूति है, जो स्व के दर्पण में इतिहास को देखते हैं, अपनी अनुभूति के जो रचयिता हैं, भाग्यविधाता हैं, जो अपने कर्मों के परिणाम के निष्पादक हैं, वह इतिहास समुद्र के इस मंथन से निश्चित रूप से अमृत प्राप्त करेंगे। हमें वही बनना है जो हमारे प्राचीन महान मानवीय मूल्यों ने और हमारी विरासत ने हमारे सम्मुख थाती के रूप में छोड़ रखा है। भविष्य का मार्ग उसी मानवता के महामार्ग से निर्धारित होगा जिसमें से वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे महान विचार की रचना हुई। स्मरण रहे कि सत्य ही हमारे प्रकाशमय पथ की जननी है। स्वार्थ और अज्ञान से उत्पन्न जिद से सत्य का मार्ग नहीं मिलता। हमें सत्यमार्ग से होकर ही अपने कर्तव्यों को समझते हुए अपने

अधिकारों की प्राप्ति की ओर आगे बढ़ना होगा। भारत में अधिकार प्राप्ति का मार्ग कर्तव्य-पथ से होकर ही गुजरता है।

वर्तमान में कोविड-19 संकट ने हमारी ऐतिहासिक चेतना के सम्मुख दूसरे और मौलिक प्रश्न भी खड़े किए हैं। विस्थापन फिर से नए रूप में सामने आया है। रोजगार, जीवन की सुरक्षा और सांस्कृतिक चेतना के संरक्षण के लिए जो पलायन और विस्थापन हमने इतिहास में होते हुए देखा थावह घरवापसी के रूप में नई करवट ले रहा है। क्या शहरों से वापस लौटे हुए लोगों को ग्राम में सुंदर और रोजगारयुक्त जीवन प्राप्त होगा? उनके स्थान पर रोजगार के क्षेत्र में शहरों में जो रिक्तियां पैदा होंगी उनमें भारतीय कामागार रोजगार प्राप्त करेंगे या फिर उन स्थानों पर गैरभारतीय घुसपैठी समूह भर दिए जाएंगे? कश्मीर में रोजगार में जुटे गैरकश्मीरी भारतीय नागरिकों, पिछड़ों, वंचितों के अधिकार क्या अनुच्छेद 370 के रद्द होने के बाद दस्तावेजों में बहाल होंगे? अथवा हर ऐसे संघर्षशील समुदाय को देशविरोधी शक्तियां अपने निजी स्वार्थ-जाल में उलझाकर कहीं उनके राजनीतिक बेजा इस्तेमाल की ओर तो नहीं बढ़ जाएंगी? इसी क्रम में बाबासाहेब भीमराव रामजी अम्बेडकर के नाम का इस्तेमाल कहीं धूर्ततापूर्ण शक्तियां तो नहीं कर रही हैं जिन्हें समाज के वंचितों को शक्तिशाली बनाने से ज्यादा रुचि इस बात में है कि कैसे भारत की सामाजिक संरचना को पूरी तरह से ध्वस्त कर देश को खंड-विखंड किया जा सके।

इतिहास ऐसे कठिन वक्त में हमारा मार्गदर्शन करता है। किन्तु सवाल है कि क्या हमारा इतिहास हमारे स्व के अनुकूल है और क्या वह भारत के अनुकूल लिखा या लिखवाया गया है? इतिहास अगर भारत के हितों की पूर्ति नहीं करता है, इतिहास अगर भारत के वर्तमान के संकटों से जुड़े प्रश्नों का समाधान नहीं करता है तो फिर इतिहास के दृष्टिकोण को लेकर बहस नए सिरे से किया जाना जरूरी हो जाता है? हमारे पुरखों के बल-विक्रम की स्मृतियों, हमारी सभ्यतागत उपलब्धियों, मूल्यों, सामाजिक एकता की वास्तविक गाथाओं, परस्पर अवलंबित, अन्योन्याश्रित सभी वर्णों और जनों के साथ परिवार भाव से संचालित ग्राम संरचना की विशेषताओं से भरा-पूरा इतिहास ही हमें वास्तविक भारत बनने की प्रेरणा दे सकता है। इस इतिहास धारा में कौटिल्य-चंद्रगुप्त मौर्य का बुद्धिबल और पराक्रम का समन्वय है तो देश की एकता के लिए बार-बार संघर्ष करने वाले समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य जैसे महानायकों का योगदान भी उल्लेखनीय है। ये भारत की प्राचीन राजनीतिक एकता का संकेत देने वाले महान विजयस्तंभ हैं। कृष्णदेवराय समेत दक्षिण भारत के महान नायकों का जीवन, पूर्वोत्तर में भारतीय जीवनमूल्यों के आधार पर राजनीतिक एकता को बल देने वाले महान नायकों की गाथाएं भी हमारे इतिहास का ही हिस्सा हैं। पाणिनी का व्याकरण, सुश्रुत का चिकित्सा शास्त्र और सूर्य सिद्धांत, गणित का महान ग्रंथ और उसके आचार्य। दर्शन और आध्यात्मिक परंपरा से जुडे महावीर और गौतम बुद्ध, दिग्विजयी जगद्गुरु शंकराचार्य इस महान थाती के अभिन्न अंग हैं। बुद्ध के समकालीन अजातशत्रु आदि कितने ही नाम हैं। ऐसे में जो विदेशी आक्रांता हैं, उनका इतिहास बताने और पढ़ाने की जरूरत क्यों आ गई जबकि उनसे पग-पग पर मुकाबला करने

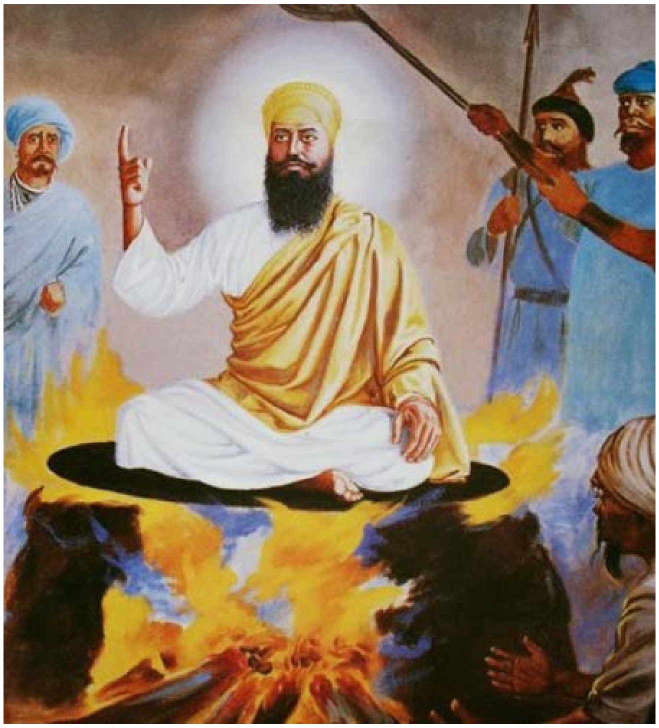

वाले हमारे महान वीरों से यह भूमि पटी पड़ी है। विदेशी आक्रांताओं और उनके परिजनों को आखिर माननीय, सम्माननीय, महान बताने वाली इतिहास दृष्टि आखिर किस कारण से भारत के बच्चों के मन में अंकित की गई, आधुनिक भारत यह सवाल अपने बौद्धिकों से पूछ रहा है। क्योंकि यदि आक्रांता ही माननीय हो जाएंगे तो उनसे संघर्ष करने वाल महानायक को क्या कहा जाएगा? जाहिर है, ऐसे हर चरित्र को इतिहास के पन्नों में वह जगह नहीं मिलेगी जो उन आक्रांताओं से संघर्ष में ही जीवन खपाते दिखते हैं जिन्हें किसी सुनियोजित योजना के अन्तर्गत हमारे इतिहास में माननीय बना दिया गया।

सिख गुरुओं की संघर्षगाथा हमारे इतिहास में हमें व्यापक रूप में पढ़ने को नहीं मिलती। गुरुदेव अर्जुनदेव और गुरु तेगबहादुर का बलिदान आज की पीढ़ियों को पता नहीं है? गुरुगोविंद सिंह महाराज का संघर्ष और उनके पुत्रों का बलिदान पाठ्यक्रमों से नदारद है। इक ओंकार सतनाम का उच्चारण करने वाले सनातन भारतीय मनोभाव से सिख दार्शनिक परंपरा को अलग बताने वाले लोग आज दुनिया के अनेक देशों में भारत के विरोध में प्रचार करते हैं तो इसका कारण क्या है? क्योंकि हमने अपने बच्चों को यह असलियत ही नहीं बताई कि संपूर्ण भारतीय आध्यात्मिक परंपराएं और संप्रदाय के मूल में सनातन वैदिक दर्शन का स्नेहमयी बीज है जिसने सर्वप्रथम विश्व में ईश्वर के एकत्व का उद्घोष किया। संपूर्ण समाज में एकता और समरसता का उदाहरण देने वाले संत रविदास, उनके गुरु स्वामी रामानंद, भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक परंपरा में सभी जाति-वर्णों को बगैर किसी भेदभाव के अधिकार मानने वाले संत रामानुजाचार्य, संत श्री रामानंदाचार्य, उन्हीं की प्रेरणा से भक्ति आंदोलन से जुड़े महान संतों चोखा मेला, नामदेव, एकनाथ, नारायण गुरु, रमण महर्षि और नाथ परंपरा समेत कितने ही मत-संप्रदाय और संत

हैंजिनके योगदान के बारे में हमारे इतिहास में व्यापक उल्लेख और सही दृष्टिकोण का अभाव है। आज तो हर संत को भी राजनीतिक के दृष्टिकोण से जातिगत खेमों में बांटकर देखा और बताया जा रहा है। यह दृष्टिकोण अभारतीय और विभाजनकारी है, इससे बचा और देश को बचाया जाना चाहिए।

इतिहास में मध्यकाल के भारतीय नायकों का स्वरूप उस रूप में कहीं उल्लिखित नहीं है जिस रूप में उसे भारत के हितों के अनुरूप रखा जाना चाहिए था। मध्यकाल में बर्बर-आक्रांताओं को ही भारत का नायक बनाकर प्रदर्शित किया गया है, जानबूझकर उनके जीवन में महानता का दिग्दर्शन कराया जाता है जबकि बर्बरता, भेदभाव, शोषण और सत्ता और दौलत के लिए भारत को तोड़ने, बांटने, चूसने के सिवाय इनका कोई योगदान ही नहीं है। इस विकट राजनीति में जिन भारतीय महानायकों से सचमुच राजनीतिक, सामाजिक और सांप्रदायिक एकत्व के लिए गहन प्रयास किए, वह नायक हमारे इतिहास से या तो नदारद हैं या कुछ पंक्तियों में ही उनका नामोल्लेखकर इतिश्री कर ली गई है। दूसरी ओर, इतिहास केवल राजाओं या राजनीति का ही नहीं होता बल्कि सभ्यता को निर्मित करने वाली लोकगाथाओं से भी वह आकार पाता है, स्थानीय जीवन, स्थानीय मूल्य, भाषा, जनता के सकारात्मक प्रयास और आंदोलन, प्रजा के सुख-दुख में से भी इतिहास जन्म लेता है। भारतीय राजनीति और राजधर्म तो प्रजा के बगैर अधूरा है। शासनतंत्र के कारनामों को ही इतिहास बताना और मानना यह अंग्रेजों की देन है, भारतीय पुराण और इतिहास की दृष्टि लोकजीवन और लोकस्मृति को भी इतिहास में उतना ही महत्व देती आई है। प्रश्न है कि क्या हम उसे इतिहास लेखन का आधारबिन्दु बना सकेंगे? प्राचीन भारतीय राजनीति, उसकी मंडल संरचना का विश्लेषण हम कर सकेंगे कि जिसमें जनता का योगदान गणतंत्र के रूप में अप्रतिम था जिसमें शासन जनता पर उसकी इच्छा के बगैर कोई नई चीज या बात थोप नहीं सकता था।

इसी क्रम में जो मराठा राजनीति है, मराठा इतिहास है, उसने मुगलिया अत्याचारों के बीच भारतीय राजनीति और इतिहास में संघर्ष की अद्भुत मशाल सुलगाई। वह मराठा इतिहास भी आज अनेक विडंबनाओं का शिकार बनाया जा रहा है। छत्रपति शिवाजी महाराज की धरोहर आज भी हमारे पास है। उस दौर की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अवस्था सेलकर मुगलों के मानस-परिवर्तन और उनके सुशासन के कुछ पन्नों को भारतीय सांस्कृतिक धारा के समन्वयवादी पर्व के रूप में देखने की दृष्टि हमें मराठा राजनीति और इतिहास से मिलती है। सह्याद्रि की पहाड़ियां आज भी इसकी गवाह हैं। 27 वर्षों की लंबी संघर्षगाथा जिसमें औरंगजेब की क्रूरता के विरुद्ध संभाजी, राजाराम और ताराबाई की बलिदान समाहित है, वह बलिदान हमसे पूछता है कि आखिर वह किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया था? क्या हम इसे भारत के अनुकूल पुनर्परिभाषित करने में सक्षम हैं? तब की सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियां क्या थीं? ज़ज़िया के खिलाफ भारतीय जन का जो विद्रोह था अथवा भारत के सांस्कृतिक पुनरोत्थान के लिए मराठों ने जिस तलवार को भवानी की सौगंध लेकर हर निर्दोष और साधारण इंसान की सुरक्षा का कवच बना दिया था, वह इतिहास हमें फिर से आवाज देता है। मुगल-मराठा संघर्ष के पन्नों को पढ़कर हमें अपने भविष्य का रास्ता मिल सकता है। हमें उन प्रश्नों के समाधान का रास्ता मिल सकता है जिनमें आज का भारत उलझा है। इसमें शिवाजी महाराज का संघर्ष, बाजीराव का महान पराक्रम और महादजी सिंधिया का समन्वयवादी महनीय व्यक्तित्व सब कुछ दिखाई देता है। और ये हमारी वर्तमान राजनीति के लिए सदा ही प्रकाश स्तंभ की तरह, ध्रुवतारे की तरह अंधेरे में पथप्रदर्शन करते रहेंगे, ऐसा इतिहास के विवेचन से स्पष्ट है।

अगर कोई पूछे कि अतीत के इन पन्नों का हमारे वर्तमान से क्या नाता? तो एक ही उदाहरण काफी है। जिस पालघर में संतों का संहार हुआ, वहां कभी संभाजी और छत्रपति शिवाजी महाराज के अष्ट प्रधान मोरोपंत पेशवा ने मुगलों की राजनीति को ध्वस्त कर भगवा फहराने का काम किया था। क्या हमें ये पन्ना भूल जाना चाहिए? इसे देखेंगे तो हमें समझ आएगा कि भगवा ओढ़े संतों की हत्या जिस भूमि पर की गई है, वहां भारतीय जीवनमूल्य जिसमें भगवा का सम्मान पोर-पोर में समाहित था, उस भूमि पर अब भगवा का सम्मान किस रूप में शेष है? अगर हम इतिहास के पन्ने भूल गए तो फिर हमें अपना भविष्य भी खोने के लिए तैयार रहना चाहिए। प्रश्न वाजिब है कि क्या हम अपना अतीत और इतिहास भूला दें? क्या इतिहास के विश्लेषण से हमारे भविष्य के मार्ग का कोई रिश्ता नहीं है? ऐसे कितने ही प्रश्न और उदाहरण हैं, जिनका रहस्य आज हमें खोज निकालना है। यह दायित्व वर्तमान पीढ़ी के कंधों पर है और हमें तय करना है कि हमें कहां जाना है और हम कहां जा रहे हैं?

कभी कभी सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति होने के कारण प्रलय की भविष्यवाणी को भी सामने रखा जाता है। हमें सद्भाव, धैर्य और साहस को इस समय में अपना मित्र बनाना होगा जो परिवर्तन को भारत हितकारी दिशा में मोड़ेगा और प्रलय की संभावनाओं को रोकेगा।

प्रलय यदि आएगी

स्थिर होगा आकाश तेरा,

पर तेरी धरती डगमगाएगी।

प्रलय-घड़ी यदि बांधी जाएगी

स्थिर होगा आकाश तेरा

पर तेरी धरती न डगमगाएगी,

फिर कभी न डगमगाएगी।

इतिहास में हमें अपनी सांस्कृतिक चेतना और जीवन मूल्यों को जागृत करना है। इसे विलुप्त रखने के कारणों को खोजकर उसका निराकरण करना है। नवनिर्माण और पुनर्निर्माण में, हिंसा और आत्मरक्षा के प्रयासों में जो अंतर होता है, उसी के अनुरूप हमें भारतीय जीवनधारा के अनुकूल इतिहास से जुड़ना है।

आलेख

पाकिस्तान का मतलब क्या
ऐतिहासिक विश्लेषण

अंबरीष फडणवीस

जिस भूभाग को हम 1947 के बाद पाकिस्तान कहते हैं, वह मूलतः एक भुराजकीय विचारधारा का द्योतक है जिसकी उपज इतिहास मे बहुत पीछे जाती है। इस लेख मे हम उस विचारधारा (इस्लाम) के मूल मे तो नहीं जाएंगे जो दारुल हर्ब और दारुल इस्लाम इन दो क्षेत्रों मे विश्व को विभागती है। किन्तु हम इसके इतिहास का पिछले 300-400 वर्षों का इतिहास अवश्य देखेंगे जिसकी परिणिती 1947 मे भारत के विभाजन मे हुई, करोड़ों हिन्दू और सिख विस्थापित हुए, लाखों हिन्दू और सिख मारे गए, की लाख हिन्दू स्त्रियों पर बलात्कार हुए।

सन 1600 से सन 1857 तक इतिहास यदि हम देखेंगे तो हमे मराठों के इतिहास को समझना आवश्यक हैं। इन 250 वर्षों मे मराठों ने भारत के राजनीति, रणनीति, विदेशनीति और धर्मनीति पर एक अमिट छाप छोड़ी है। हमारी शिक्षा व्यवस्था मे प्रस्थापित त्रुटियों के कारण हमे वह छाप जानबूझकर सिखाई नहीं जाती। यह लेखन प्रपंच इसी त्रुटि को सुधारने का प्रयास है।

पावरसेंटर अर्थात सत्ता का शक्तिकेंद्र - वह जहां कहीं भी हो, उसकी और वहाँ परंपरागत रहनेवाले लोगों की एक अपनी विशेषता होती है। दिल्ली जिसे हम प्राचीन काल मे इंद्रप्रस्थ नाम से जानते थे, उसकी और यहाँ रहनेवाले लोगों का एक अपना विशेष स्वभाव है। सत्ता और शक्ति की ओर देखने का अपना एक दृष्टिकोण है। जब हम मराठों की बात करते हैं तब हमे ये ध्यान मे रखना चाहिए की नर्मदा नदी के दक्षिण मे जीतने भी राजनेता हुए हैं (पिछले 5000 वर्षों की बात कर रहा हूँ, उनकी दर्शन एवं दृष्टि पंजाब अथवा मगध अथवा कुरु-पांचाल से बहुत भिन्न है। यद्यपि सभी सनातन धर्म ही के पालन करने वाले हैं, किन्तु भूगोल पूरी तरह से भिन्न हैं जिसके कारण आदतें भी उत्तरभारत से बहुत अलग हैं।

> **तीन सौ वर्ष पश्चात दक्षिण भारत को छोड़ लगभग पूरा भारत मुसलमान अधिसत्ता के तले आ गया था। इनमे से लगभग सारे ही विदेशी थे जो घर मे तुर्की या फारसी भाषा बोलते थे और दरबार मे फारसी और धर्मकार्यों मे अरबी। बेरार का बादशाह छोड़कर कोई भी भारतीय मूल का मुसलमान भी नहीं था। न कभी किसी भारतीय भाषा का इन्होंने प्रयोग किया न सन्मान किया। भारतीय धर्मों का सन्मान करना तो दूर की बात रही।**

इसीलिए जब हम 'भारतवर्ष' कहते हैं तब हमें भारत को भुराजकीय दृष्टिकोण से जानना आवश्यक हो जाता है।

भारत का भूगोल

यह भारत का एक अप्रतिम मानचित्र है जिसे हमने 'India in Pixels' इस फ़ेसबुक पेज से साभार उद्धत किया है। इस चित्र को देखकर हमें भारत का भूगोल ठीक से समझ मे आता है। सिंधु-सरस्वती-गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र - इन पाँच नदियों की घाटी को हम उत्तरभारतीय सपाट प्रदेश कहते हैं (Indo-Gangetic Plains)। इस विस्तृत प्रदेश मे पंजाब (भूतपूर्व नाम केकय जहां से माता कैकेयी थी), कुरु-पांचाल (आज का उत्तरप्रदेश), मगध (पूर्वाञ्चल, बिहार और पश्चिमी बंगाल, झारखंड), अंग-वंग-पुंड्र ये तीन प्रदेश (आज का हूगली से पूर्वी बंगाल, बांग्लादेश) और कामरूप (आजक आसाम) ये भाग आता है। महाभारत का अंगराज कर्ण, इसी अंगदेश (आज का उत्तरी बंगाल) का राजा था। मगध मे जरासंध, कुरु-पांचाल मे कौरव-पांडव। तब से लेकर अब तक, इनमे से मगध ने काफी समय तक पूरे उत्तरी भारत पर राज किया है। यू कहिए की जब तक भारत मे हिन्दुओंका शासन रहा, तब वह प्रायः मगध

लेखक सुप्रसिद्ध लेखक एवं स्तम्भकार हैं।

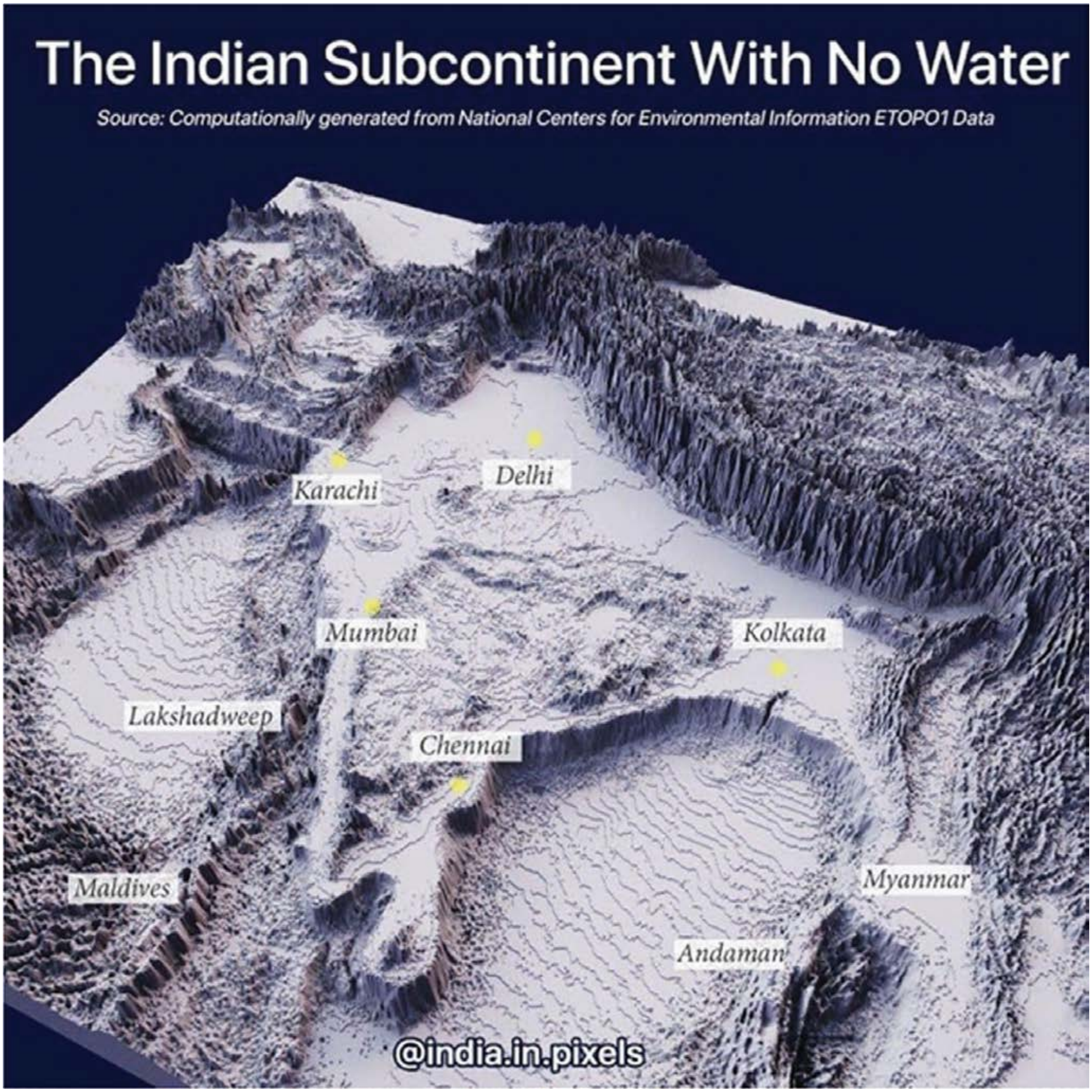

से शासित होता रहा।

यदि हमें एक उदाहरण देना हो, तो प्याज का उदाहरण ठीक रहेगा। प्याज की एक एक परत जैसे निकलते जाती है, वैसे वैसे हम उसके केंद्र की तरफ आने लगते हैं। किन्तु यदि हमने प्याजकी सारी परतें निकाल दी, को कुछ नहीं बचता। प्याज का अस्तित्व ही उन परतों मे हैं। प्याज की परतें किसी केंद्र को अथवा बीज को आच्छादित नहीं करतीं। वे परतें ही प्याज है।

उसी प्रकार, गांधार, केकय, पंजाब, कुरु-पांचाल, मगध, वंगदेश, कामरूप, राजपूताना, मध्यभारत, दक्षिणापथ ही सब भारत की और सनातन धर्मे के राजनीति की परतें हैं। जब जब हमपर विदेशी आक्रमण हुए, आक्रान्ताओं ने सबसे बाहरी परतों पर अपना शासन बैठाया। और जब जब हिंदुओं ने पुनः भारत को स्वतंत्र किया, वह हमेशा अंदरूनी परतों मे बसने वाले हिंदुओं ने बाहरी परतों के भूभाग को और लोगों को, वहाँ के तीर्थों को स्वतंत्र किया।

इस प्रकार भारत एक सांस्कृतिक एकता के सूत्र मे बँधा हुआ राष्ट्र है।

सन 1200 मे भारत की परिस्थिति

यह भारत की सन 1200 मे परिस्थिति थी। इस्लाम ने तुर्कों

के द्वारा उत्तरी सपाट प्रदेश पर कब्जा कर लिया था और शासन प्रस्थापित कर दिया था। यह करने के लिए उन्हे 500 साल राजपूतों से युद्ध करना पड़ा। गुर्जर प्रतिहार राजपूतों ने इस्लाम के आक्रमण को भारत के अंदरूनी परतों मे प्रस्थापित होने से 500 वर्षों तक युद्ध किया था, इसीसे उनकी वीरता का प्रमाण मिल जाता है। इस 500 वर्ष लंबी लड़ाई मे उन्हे दक्षिणापथ के चालुक्य और राष्ट्रकूट साम्राज्यों का और काश्मीर के करकोट साम्राज्य का भी सहयोग प्राप्त हुआ। तो यह सभी हिंदुओं का इस्लामी विदेशी आक्रमण के विरुद्ध एक साझा आंदोलन था ऐसा कहा जा सकता है। जब काश्मीर से लेकर महाराष्ट्र तक के हिन्दू राजा 500 वर्षों तक एक समान शत्रु से युद्धरत रहते हो और बिकट समय आते एक दूसरे की सहायता करते हो, उसीमे मे भारत का प्राचीन, नित्यनूतन और जीवंत राष्ट्रीय चरित्र का परिचय मिल जाता है। भारत 1947 मे बना, इस वामपंथी विचार का खंडन करने के लिए यही पर्याप्त है। किन्तु अपना आजक विषय वह नहीं।

सन 1500 का भारत

तीन सौ वर्ष पश्चात दक्षिण भारत को छोड़ लगभग पूरा भारत मुसलमान अधिसत्ता के तले आ गया था। इनमे से लगभग सारे ही विदेशी थे जो घर मे तुर्की या फारसी भाषा बोलते थे और दरबार

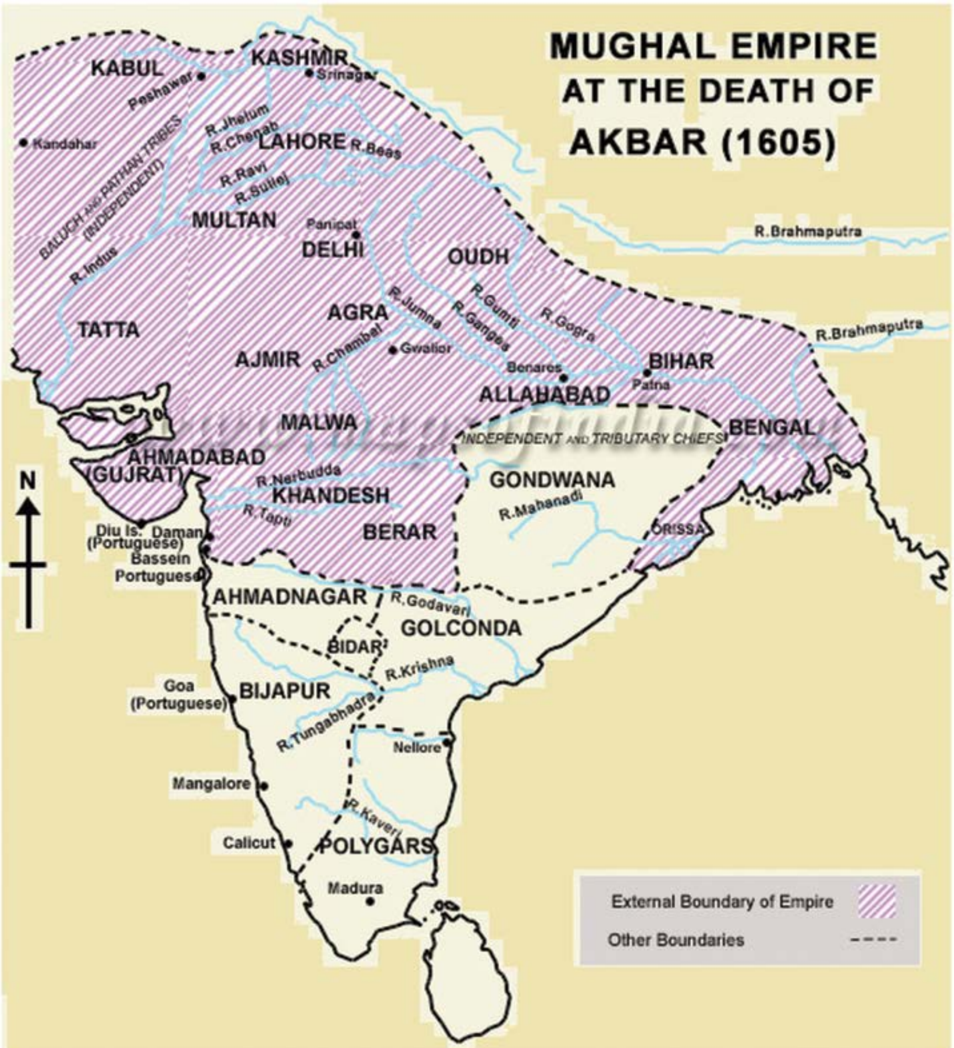

मे फारसी और धर्मकार्यों मे अरबी। बेरार का बादशाह छोड़कर कोई भी भारतीय मूल का मुसलमान भी नहीं था। न कभी किसी भारतीय भाषा का इन्होंने प्रयोग किया न सन्मान किया। भारतीय धर्मों का सन्मान करना तो दूर की बात रही। इस समय दक्षिण मे केवल विजयनगर साम्राज्य ने हिंदुओं के प्रतिकार की अग्नि प्रज्वलित रखी थी। हिंदुओं ने इस्लामी आक्रान्ताओं का किया प्रतिकार मे विजयनगर साम्राज्य का नाम सुवरणक्षरों मे लिखा जाता है। न केवल सामरिक और राजनैतिक प्रतिकार, अपितु धार्मिक प्रतिकार भी विजयनगर ने पुरजोर किया। इस साम्राज्य संस्थापक ही बलपूर्वक मुसलमान कर दिए गए थे जिन्हे श्रृंगेरी के शंकराचार्य विद्यारण्य स्वामीजी ने पुनः शुद्धि कर हिन्दू करवा लिया और इन दो नवयुवकों ने (सम्राट हरिहर राय और सम्राट बुक्कराय) विजयनगर साम्राज्य की नीव रखी। किन्तु 1565 आते आते दक्षिण के सभी सल्तनतों ने मिलके विजयनगर पर साझा आक्रमण किया और तालीकोट की लड़ाई मे विजयनगर साम्राज्य की पराजय हुई। एक दो दशक के पश्चात महाराणा प्रताप को छोड़कर बाकी पूरा राजपूताना भी मुग़लों ने जीतकर शांत कर दिया था।

सन 1600 का भारत - लग रहा था अब न होगा इस निशा का फिर सवेरा

छत्रपती शिवाजी महाराज और मराठों का उदय इस पार्श्वभूमी मे हुआ हैं। राजपूत-चालुक्य-राष्ट्रकूट-करकोट साम्राज्यों के ध्वजतले हिंदुओं ने लगभग 900 साल तर ही भीषण युद्ध लड़ा (सन 711 से लेकर सन 1605 तक)। इस युद्ध के चलते ही भारत इन विपरीत परिस्थितियों मे भी अपना हिन्दू चरित्र बनाए रख सका। किन्तु 1605 मे सारी आशाएं सिमटने लगीं और हिंदुओं का बाहुबल क्षीण होने लगा। छत्रपती शिवाजी महाराज और मराठों ने किया हुआ काम इसलिए अतुलनीय है। यदि हम हमारे ही कुल के किसी पूर्वज को जो 1605 - 1620 मे जीवित था उससे बात कर पाते और कहते की अगले सौ सालों मे हिन्दू दिल्ली पर शासन कर रहे होंगे (जो हुआ - बाजीराव पेशवा ने दिल्ली पर पहली चढ़ाई 1719 मे की) तो या उस 1610 मे जीवित हमारे पूर्वज को असंभव लगता। किन्तु यह हुआ। इसी चमत्कार को हम शिवाजी महाराज और मराठों का इतिहास इस नाम से जानते हैं।

राजपूत-चालुक्य-राष्ट्रकूट-करकोट साम्राज्यों के ध्वजतले हिंदुओं ने लगभग 900 साल तर ही भीषण युद्ध लड़ा (सन 711 से लेकर सन 1605 तक)। इस युद्ध के चलते ही भारत इन विपरीत परिस्थितियों मे भी अपना हिन्दू चरित्र बनाए रख सका। किन्तु 1605 मे सारी आशाएं सिमटने लगीं और हिंदुओं का बाहुबल क्षीण होने लगा। छत्रपती शिवाजी महाराज और मराठों ने किया हुआ काम इसलिए अतुलनीय है।

ध्यान मे रखने वाली बात ये हैं की जब हम मराठा साम्राज्य

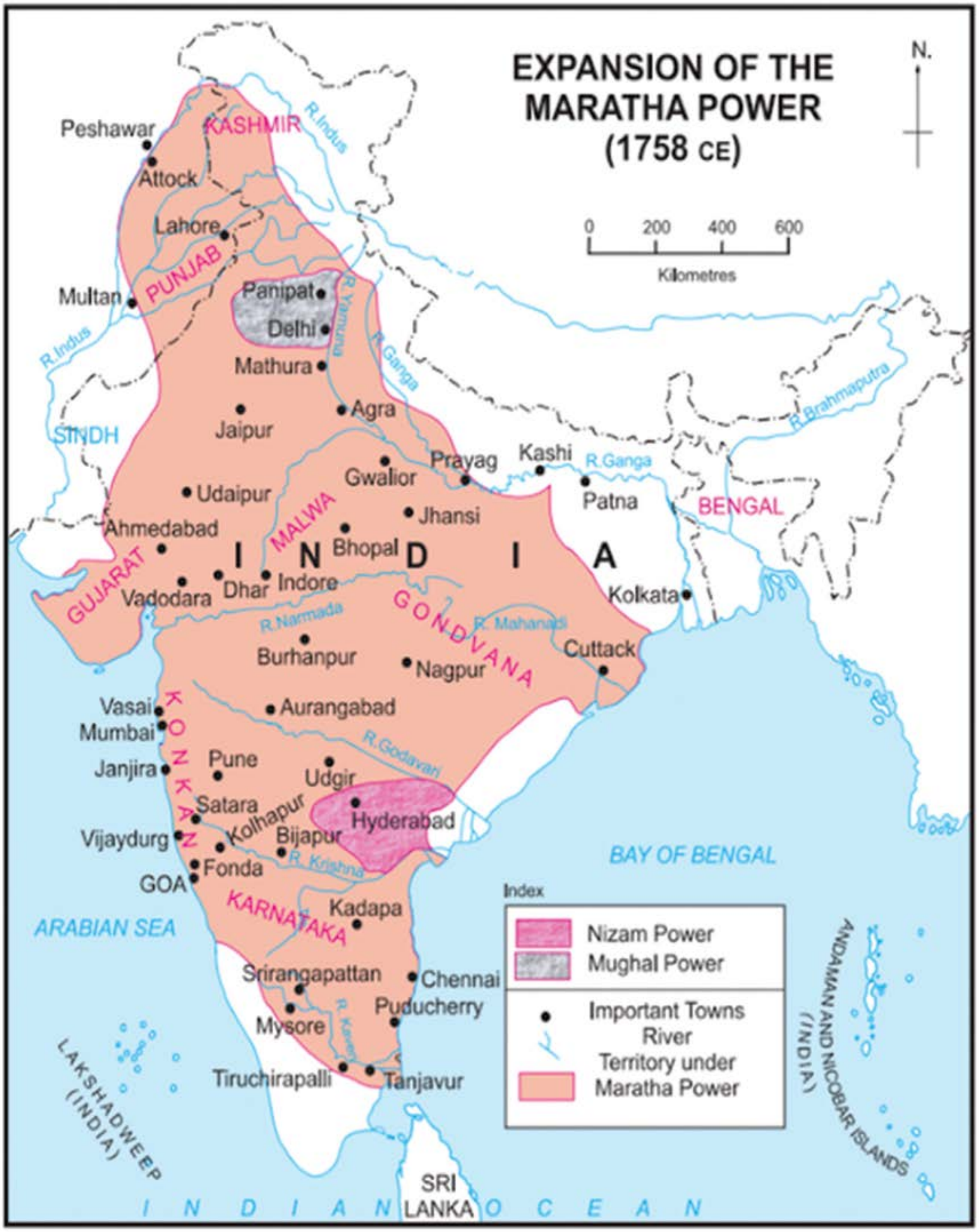

कहते हैं वह मराठी भाषा प्रधान साम्राज्य नहीं था। मराठा साम्राज्य उस काल के अखिल भारतीय हिन्दू साम्राज्य जा स्वरूप था जिसका प्रतिनिधित्व तत्कालीन मराठा सेनापति कर रहे थे। मराठा साम्राज्य की सेनाओं मे तेलुगु थे, कन्नड लोग थे, गुजराती थे, तमिल थे, आज के उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के लोग थे, राजपूत थे, पंजाबी थे, जाट थे, बुंदेले थे। यदि आज की परिभाषा का प्रयोग हम करते तो मराठा सेना को हम भारतीय सेना अथवा अखिल भारतीय हिन्दू सेना की ही संज्ञा देते। ये बिन्दु बड़ा आवश्यक है अन्यथा हम क्षेत्रीय अभिनिवेश मे आ पूर्वजों के पराक्रम और समझ पर पानी फेर देते हैं।

1760 का भारत

ये पूरा क्षेत्र हिंदवी स्वराज्य (मराठे अपने साम्राज्य को हिंदवी स्वराज्य के नाम से बुलाते थे) के या तो सीधे आधिपत्य मे था या उनको चौथाई कर दे उनके संरक्षण मे था। हिंदुओं की ही भांति मराठों ने एक छत्र के तले शासन नहीं किया। हिंदुओं की ही भांति

इनकी भी आपस मे तू तू मैं मैं होती ही थी। किन्तु मराठों के विभिन्न घरानों ने (भले ही वे पुणे के पेशवा के सीधे अधीन हो या न हो) यह पूरा भूभाग जीत कर वहाँ हिन्दू धर्म की रक्षा तो की ही थी। कावेरी नदी के उत्तर मे बने बहुतेरे सभी मंदिरों का पुनर्निर्माण मराठों ने किया है। क्योंकि उन सबको इस्लामी राज्यकर्ताओं ने क्षति पहुंचाई थी। ये सब पुनर्निर्माण और पुनराक्रमण की शुरुवात हुई छत्रपती शिवाजी महाराज के अवतारी कार्य द्वारा।

गोब्राह्मणप्रतिपालक क्षत्रिय कुलावतंस सिंहसनाधीश्वर छत्रपती शिवाजी महाराज की जय !

जब हिन्दू (मराठे) भारत को पुनः स्वतंत्र करा रहे थे - तब इस्लामी राज्यतंत्र से जुड़े लोग क्या कर रहे थे?

हिंदुओं का पराक्रम देख काज़ी-मुल्लाह वर्ग मे हलचल मच गई। रोहिलखंड के नजीब और मौलाना शाहवली के नेतृत्व मे उन्होंने अफगानिस्तान के बादशाह अहमदशाह दुर्रानी को (जिसे अब्दाली भी कहते हैं) भारत पर (माने हिंदुओं पर) आक्रमण करने आमंत्रित किया। लूटने की अभिलाषा से वह आया, 1761 की मकर संक्रांति के दिन पानीपत मे मराठों की और पठानों की बड़ी लड़ाई हुई जिसमे मराठों की हार हुई। किन्तु पठानों की इतनी जबरदस्त क्षति इस युद्ध मे पहुंची की वे जीत के तुरंत बाद जीत हुआ सारा भूभाग पुनः मराठों के हवाले सौंप कर वापस लौट गए। फिर कभी किसी पठान की भारत के किसी क्षेत्र पर इतनी बड़ी शक्ति और सेना के साथ आक्रमण करने की हिम्मत नहीं हुई। छोटे मोठे युद्ध होते रहे किन्तु अगले 50 सालों मे सिखों ने काबुल ही जीत लिया। पानीपत की तीसरी लड़ाई मे हुई पठानों की क्षति का फायदा उठाकर पंजाब मे सिख संघटित हुए और सिख साम्राज्य की नीव धीरे धीरे रखी गई।

ये जो कुछ भारतीय मुसलमानों की मनोवृत्ति है - की हिंदुओं को हराने के लिए विदेशी आक्रांता को आमंत्रित कर उनका साथ देना - इसी मनोवृत्ति का अर्थ पाकिस्तान है।

पाकिस्तान ये नाम तो आधुनिक है। किन्तु ये मानसिकता बहुत पुरानी है जो उस समय किसी और नाम से पनपी और आज पाकिस्तान के नाम से पनप रही हैं। इसी शाहवली मौलाना के वंशज ने आगे चलकर दारुल उलूम देवबंद इस मदरसे की स्थापना की। इसी क्षेत्र के मुसलमानों ने (पश्चिमी यूपी, दिल्ली) मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की मांग का धीरे धीरे समर्थन किया जिसकी परिणिती 1947 के भारत के विभाजन मे हुई। इस समस्या को पनपाकर रखने वाले कई घटक हैं - इनमे तेल की आंतरराष्ट्रीय राजनीति है, काबुल-पेशावर-कराची-मुंबई इस रूट से होने वाली अफीम और अन्य ड्रग्स की स्मगलींग है। विभिन्न संप्रदायों मे बटा भारत का मुस्लिम समाज है जो हिंदुओं के प्रति का अपना रुख तो लगभग एक सा ही रखता है। जो सुशांत सिंह राजपुत का केस आजकल सुर्खियों मे हैं, उसकी जड़े भी इसी कराची-दुबई से होनेवाले ड्रग्स के स्मगलींग से जुड़ती दिख रही है। इसी रूट का प्रयोग कर 1993 मे और उसके बाद कई बार मुंबई और पूरे भारत मे आतंकवादी जिहादी हमले हुई। इसी रूट से कसाब की टोली ने आ कर 26/11/2008 को मुंबई मे नरसंहार किया था।

दुष्टचक्र

पिछले 1200 साल से चल रहा और पिछले 250 वर्षों से (जब से हिंदुओं ने भारत दोबारा जीत लिया) बहोत आक्रामक हुआ ये दुष्टचक्र भारत के प्रत्येक नागरिक की निजी जीवन को बहोत करीब से छूता है। बस हम अज्ञानवश इसे जान नहीं पाते या इसकी ग़लत कारण मीमांसा करते हैं। भारत मे तेल-पेट्रोल का महंगा होना, चीन से हो रहे भारत के पंगे, घड़ी घड़ी भारत के गलियों मे और शहरों मे बार बार हो रहे दंगे और फसाद इसी दुष्टचक्र से जुड़े हुए हैं। इसी चक्र ने हिंदुओं के विरुद्ध कभी पठानों से संधि की, कभी अंग्रेजों से, कभी अमरीका से और अब चीन से कर रहे हैं। इसी चक्र के चलते भारत जैसे मूलतः विकसनशील और आर्थिक रूप से कमजोर देश को सामरिक क्षमताओं मे निवेश करना ही पड़ता है। जो पैसा लोकहित के कार्यों मे लग सकता है, वह सेना मे लगाना ही पड़ता हैं क्यूंकी जब तक ये मानसिकता है, तब तक भारतीय उपखंड मे शांति प्रस्थापित हो ही नहीं सकती। हमे सदैव युद्ध के लिए तत्पर रहना ही पड़ेगा। इसी चक्र के चलते आजतक हमारे लगभग 55,000 जवान काश्मीर की घाटी मे हुतात्मा हुए हैं। यही चक्र अलीगढ़ विद्यापीठ, जेएनयू, जामिया-मिलिया, ओसमानिया आदि विद्यापीठों मे लगातार हो रहे घटनाओं का जनक है। घर से निकले व्यक्ति के परिवार को उस व्यक्ति के वापिस घर आने तक एक अनामिक भय सताता रहता है की घर से निकला व्यक्ति ठीकठाक शाम को वापिस घर आएगा भी या नहीं। ये बहोत बड़ी कीमत हम की दुष्टचक्र की चुका रहे हैं। इसी दुष्टचक्र का नतीजा वोट-बैंक की राजनीति है। इसी का नतीजा ड्रग की समस्या है। और इसी का नतीजा भ्रष्टाचार भी है क्योंकि अवसरों की कमी के चलते लोग पैसे खाकर या खिलाकर काम निकालने की मानसिकता बना बैठे हैं।

शिवाजी महाराज ने जो काम 1645 मे शुरू किया, जिसे आगे उनके वंशजों ने और अनुयायियों ने आगे बढ़ाकर भारत को पुनः हिंदुओं के अधीन कराया। जिसके चलते आज भारत मे हिंदुओं की बहुसंख्या सुनिश्चित है। वह काम 1761 की उस पानीपत की तीसरी लड़ाई के परिणाम स्वरूप अधूरा रह गया है। जब तक वह पूरा हो भारत मे सच्ची शांति की स्थापना नहीं होगी, हमारी पीढ़ियों को शांति इस शब्द का अर्थ केवल शब्दकोश से ही मालूम होता रहेगा, कभी सम्पूर्ण शांति की अनुभूति नहीं होगी।

भाषिक आतंकवाद
मध्ययुगीन अन्तस्सूत्र

कमलेश कमल

संस्कृतियों के सामासिक संघ के रूप में भारतवर्ष में भाषा का प्रश्न भावना का प्रश्न है, विविध विचार सरणियों के विवेचन का प्रश्न है। जब प्रश्न इसके स्वरूप, व्यवहार और संरक्षण का हो, तब तो यह और भी जटिल हो जाता है। हाँ, यह सर्वविदित और निर्विवाद है कि भाषा केवल सद्भावना से समृद्ध और संरक्षित नहीं होती वरन् प्रयोग, व्यवहार और आचरण से बनती और बचती है। यह तब बचती है जब लोक-व्यवहार के साथ-साथ सत्ता और समाज के बौद्धिक वर्ग को इस पर गर्व हो। दूसरे शब्दों में कहें, तो किसी भाषा की चमक तब बनी रहती है जब समाज के प्रबुद्ध वर्ग (rational intelligentia) को उस भाषा से प्रेम हो, वे गर्व के साथ इसका प्रयोग करने लगें। जब ऐसा होता है और जब राजकीय संरक्षण मिलने लगता है तब भाषा संरक्षित,संपोषित और सुविकसित होने लगती है।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुगल काल, इसके अनन्तर एवं इससे पूर्व की आरोपित राजसत्ताओं की भाषिक प्रतिबद्धताएँ यहाँ की भाषिक संस्कृति, भाषिक-लोक व्यवहार से सर्वथा भिन्न रही हैं। यह विभिन्नता इतनी अधिक रही है कि आज भी इसका प्रभाव भारतीय समाज में व्याप्त है।

आईटीबीपी में डिप्टी कमांडेंट एंव सुप्रसिद्ध लेखक।

अध्ययन में हम पाते हैं कि भारत की बहुधर्मीय, बहुजातीय, लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक बहुभाषिक संस्कृति का विकास हुआ। यह बहुभाषिकता सनातन के सूत्र में भली प्रकार गुँथी हुई थी। आक्रांताओं की आरोपित व्यवस्था में यह भी छिन्न-भिन्न होने लगी। यहाँ ध्यातव्य है कि सभ्यता धर्म की पर्यायवाची नहीं होती। भारतभूमि की ही बात करें, तो धर्म परिवर्तन के तमाम प्रयासों और घटनाओं के बावजूद धर्म रक्षित रहा, सभ्यता के साथ घालमेल होता रहा। सभ्यता के साथ घालमेल में भारतीय भाषाओं के साथ बड़ा अन्याय हुआ और देश की भाषिक व्यवस्था के समक्ष एक गहरा संकट उपस्थित हो गया।

भारत के संदर्भ में भाषिक समस्या की विवेचना करते समय एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या होता अगर विदेशी आक्रांताओं की संस्कृतियों का यहाँ की संस्कृतियों से सम्मिश्रण नहीं होता, या कुछ संदर्भों में आरोपण नहीं होता? मुगल मराठा संघर्ष का परिणाम अगर भिन्न होता तो क्या होता या पूर्व मध्यकाल में राजपूत राजाओं की ग़ुलाम, ख़िलजी, तुगलक राजाओं पर जीत होती तो क्या होता? अस्तु, इस तरह के किसी भी ऐतिहासिक, तार्किक और विचारणीय प्रश्न को लेकर कोई राय बनाने से पूर्व गहराई में जाकर विविध आयामों से विश्लेषित कर लेना समीचीन होगा।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखें तो यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुगल काल, इसके अनन्तर एवं इससे पूर्व की आरोपित राजसत्ताओं की भाषिक प्रतिबद्धताएँ यहाँ की भाषिक संस्कृति, भाषिक-लोक व्यवहार से सर्वथा भिन्न रही हैं। यह विभिन्नता इतनी अधिक रही है कि आज भी इसका प्रभाव भारतीय समाज में व्याप्त है। उदाहरण के लिए आज भी थाने से लेकर कोर्ट-कचहरी तक अंग्रेजी और फ़ारसी का बाहुल्य और प्राचुर्य है। स्थिति यह है कि अपनी ही शिक़ायत की कॉपी पढ़कर कोई व्यक्ति समझ नहीं सकता कि मुंशी ने क्या लिख दिया है। अपनी ही ज़मीन के कागज़ात पढ़ कर कोई किसान

समझ नहीं सकता क्योंकि इसकी भाषा वह नहीं है जिसमें वह बात करता है, लोकव्यवहार करता है। यह एक तरह का भाषिक-आतंकवाद है जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं।

वस्तुतः, भाषा के प्रभावी शब्द लोक से आते हैं, जनता के प्रयोग से बनते और व्यवहृत होते हैं। मध्यकाल में भाषा के इस लोकपक्ष की अवहेलना हुई और यहाँ की बहुभाषिकता, विविध मातृभाषाओं पर फ़ारसी को थोप दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भाषा के नाम पर भारी भ्रम उत्पन्न हो गया। भाषाई सामंजस्य तो हुआ नहीं, वरन् यहाँ की लोकसंस्कृति के परिप्रेक्ष्य में एक असम्प्रेषणीय भाषा से लोक का बहुत अहित हुआ। बलात् थोपी गई भाषा के आतंक से न केवल नैसर्गिक-भाषिक-प्रतिभाओं का दमन हुआ, अपितु निजभाषा को लेकर एक हीन-भावना भी चेतन-अचेतन में व्याप्त हो गई।

कहना न होगा कि विदेशी आक्रांताओं ने यहाँ की भाषिक-पारिस्थितिकी को छिन्न-भिन्न कर दिया और एक धर्म विशेष को वरीयता देते हुए उस पर आधारित तंत्र विकसित करने का प्रयास किया। लेकिन व्यक्ति सामाजिक तंत्र का एक पुर्जा भर नहीं होता, उसका अस्मितापूर्ण अस्तित्व होता है। सहकार पर आधारित या लोकसंपृक्त जीवन-दर्शन कोई ऊन का पैटर्न नहीं होता, जिसे सहजता से उघाड़, उजाड़ कर नए सिरे से बुन लिया जाए। ऐसे में, नए भाषिक परिवेश को लेकर, आतंक, प्रतिरोध और अनुकूलन की कई संक्रियाएँ एक साथ घटित हुईं।

भाषा की बात करते समय परिवेश अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कारक हो जाता है। नॉम चॉमस्की जैसे प्रबुद्ध विद्वान् तो कहते हैं कि भाषा के लिए परिवेश ही सबसे महत्त्वपूर्ण होता है और इसके समक्ष मातृभाषा जैसी कोई चीज़ नहीं ठहरती। उदाहरण के लिए, अगर किसी बच्चे के माता-पिता की भाषा हिंदी हो पर उसे ऐसे परिवेश में रखा जाए जहाँ हर कोई फ़ारसी या कोई अन्य भाषा बोलता हो, तो वह उसी भाषा को सीखेगा, हिन्दी नहीं। कोई जिस परिवेश में रह रहा होता है, वहाँ की भाषा सुननी, सीखनी होती है। ध्यान देने की बात है कि परिवेश को गढ़ने में राजसत्ता, अर्थतंत्र और सामाजिक ताने-बाने का निर्णायक योगदान होता है। मध्ययुगीन परिदृश्य में दृष्टिपात करें, तो राजसत्ता और शहरी अर्थतन्त्र ने फ़ारसी को न केवल प्रश्रय दिया, बल्कि धर्म को आधार बना कर सामाजिक ताने-बाने को भी बदलने का प्रयास किया।

भाषिक संरक्षण का सबसे बड़ा माध्यम है शिक्षण। यहाँ गुरुकुलों, विद्यालयों की जगह बड़ी संख्या में मदरसे खुल गए, जिन्हें शासकीय मदद और संरक्षण दिया गया। पहले वजीफ़ों के लिए और आगे रोज़गार के लिए फ़ारसी पढ़ना अनिवार्य हो गया। देवनागरी में क, ख, ग की जगह बच्चे फ़ारसी वर्णमाला सीखने लगे। इससे भारतीय भाषाओं के समक्ष एक ऐतिहासिक संकट उत्पन्न हो गया। यह अस्मिता का संकट था।

विचारणीय है कि सत्य के प्रति सतत और अशेष निष्ठा रखने वाले 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' कहकर जब राष्ट्र जागरण हेतु निकलते हैं, तब भूषा, भोजन और भेषज आदि से पूर्व मातृभाषा के प्रश्नों को देखते हैं, सत्साहित्य को देखते हैं। किसी भी समाज के सम्पूर्ण जीवन-दर्शन और लोकानुभव को देखना हो, तो वहाँ के काव्य को देखने की बात की जाती है। इसलिए ऐसी आश्वस्ति है कि काव्य शब्द सांख्यिकी नहीं, वरन् एक जीवंत इकाई है। इसे साध्य और साधन दोनों माना जाता है। मध्यकाल में भाषा का संकट काव्य पर भी गहराया। महाकाव्य, खण्डकाव्य और चम्पू काव्य के प्रतिस्थापन के रूप में उर्दू की शेरो-शायरियाँ आ गईं, तिलिस्मी-ऐयारी की कहानियाँ आ गईं।

इस अतिक्रमण से आनंद का तत्त्व तिरोहित हो गया। ज्ञातव्य है कि शब्द की ग्राह्यत्व शक्ति शब्द की ग्राहकत्व शक्ति के साथ सुमेलित होकर ही आनंद की तदाकार परिणति करवाती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब भाषा का प्रयोक्ता उसी भाषा के शब्दों का प्रयोग कर रहा हो, जिस भाषा में उसके जीवनानुभव हैं। अगर भाषा ऐसी नहीं हुई या कोई थोपी हुई भाषा हुई तो प्रयोक्ता, प्रयुक्त रूप और गृहीत रूप के शब्द-चिंतन के त्रिआयामी स्वरूप में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहना न होगा कि थोपी हुई भाषा के कारण मध्यकालीन भारत में यह विकार उत्पन्न हुआ।

भाषाई नैरन्तर्य अथवा स्थाईत्व के लिए आधुनिकता, वैज्ञानिकता और लचीलापन महत्त्वपूर्ण कारक हैं। इनके बिना सांस्कृतिक-भाषिक बिखराव की अंतहीन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है जो संभाले नहीं संभलती।

भारतीय भाषाओं को देखें, तो ये उन भाषाओं से कहीं बेहतर हैं, जिनके आतंक में ये रही हैं या रह रही हैं। यह प्रकृति के आँगन में संतों, भक्तों से शक्ति प्राप्त करके लोक शक्ति के सहारे विकसित हुई है। यदि इसका प्रचार-प्रसार ठीक तरह होता रहा, तो शीघ्र ही मंदारिन, अंग्रेजी आदि को प्रतिस्थापित कर यह विश्व की नम्बर एक भाषा बन जाएगी।

संस्कृत एक साथ शास्त्रीय (क्लासिकल) और आधुनिक दोनों निकषों पर योग्य है और यह प्रमाणित भी है। कम्प्यूटर के सर्वथा उपयुक्त कोई भाषा है, तो वह संस्कृत है जिसके नियम गणित के नियमों की भाँति सुस्पष्ट हैं; यह अलग बात है कि यह देवभाषा दुष्प्रचार का शिकार हो गई। अरबी-फ़ारसी और अंग्रेजी को स्थापित करने के लिए यह दुष्प्रचार किया गया कि संस्कृत जीवित और जीवंत भाषा नहीं है या विशुद्धता के आग्रह के कारण यह समावेशी नहीं रही।

उपर्युक्त संदर्भ में देखें तो किसी भाषा को विशुद्ध बनाए रखने का आग्रह एक तरफ़ है और दिनप्रतिदिन के जीवनानुभवों, धूल-मिट्टी, पंक-पसीने से लथपथ होने की प्रक्रिया दूसरी तरफ़। देखा गया है कि दूसरी प्रक्रिया ही किसी भाषा के फलने-फूलने में अधिक

महत्त्वपूर्ण है। बंद कमरे में फूल-माला चढ़ाने और धूप-अगरबत्ती दिखाने से भाषा का भी दम घुटता है। इसलिए इससे सहमत होना होगा कि हाँ, विशुद्धता का अति आग्रह छोड़ संस्कृत, तमिल आदि कुछ भारतीय भाषाओं के लिए हमें खिड़कियाँ, दरवाजे खोलने होंगे।

गली-चौराहे घूम-घाम कर लोक से अर्जित सुख-दुख, दंभ और हीन-ग्रंथि, संघर्ष की गाथा, जीत-हार के गीत और बोल से भाषा समावेशी होती है। हिंदी अगर 60 करोड़ से अधिक भारतीयों का कंठाभूषण बनी हुई है, तो इसका यही कारण है। यही हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की शक्ति है और यही थाती। हिंदी चैनलों की संख्या लगातार बढ़ रही है। बाजार के दबाव में ही सही विदेशी कम्पनियों और उत्पादों के विज्ञापन हिंदी में आ रहे हैं। अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। ट्विटर और फेसबुक आदि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर हिंदी की धमक लगातार बढ़ रही है।

हिंदी अगर 60 करोड़ से अधिक भारतीयों का कंठाभूषण बनी हुई है, तो इसका यही कारण है। यही हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की शक्ति है और यही थाती। हिंदी चैनलों की संख्या लगातार बढ़ रही है। बाजार के दबाव में ही सही विदेशी कम्पनियों और उत्पादों के विज्ञापन हिंदी में आ रहे हैं। अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। ट्विटर और फेसबुक आदि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर हिंदी की धमक लगातार बढ़ रही है।

हिंदी तो इतनी समावेशी है कि उद्भव के आधार पर इसके चार प्रकारों में विदेशज शब्दों का एक बहुव्यापक प्रकार ही है जिसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेजी, पुर्तगाली, पश्तो, यूनानी, रूसी, स्पेनिश, इतालवी, जर्मन, डच, लैटिन आदि अनेकानेक भाषाओं के शब्द शामिल हैं। इन शब्दों के समावेश से हिंदी समृध्द ही हुई। हाँ, समस्या तब उत्पन्न हुई जब अरबी-फ़ारसी और अंग्रेजी के शब्दों ने हिंदी के शब्दों को प्रतिस्थापित करना शुरू कर दिया। सुख 'ख़ुशी' तो दुःख 'गम' हो गया। शुद्ध 'सही' और अशुद्ध 'ग़लत' हो गया। दर्पण या मुकुर का प्रयोग एकदम बंद होकर 'आईना' ही व्यवहत हो गया। बलवान 'मज़बूत' तो अशक्त का स्थान 'कमज़ोर' ने ले लिया। इसी तरह अल्प को 'कम', सदा को 'हमेशा' कहा जाने लगा। इससे भाषा में समृद्धि नहीं आई वरन मूल शब्दों के लोप से इसका मौलिक स्वरूप ही दूषित होने लगा। विचारणीय है कि ऐसा अरबी-फ़ारसी और अंग्रेजी के शब्दों से ही हुआ जिनसे सम्बंधित राजसत्ताओं के हम अधीन रहे। यह भाषिक अतिक्रमण एवं अत्याचार किसी भी दृष्टि से हितकारी नहीं है।

यह भाषिक अतिक्रमण केवल अरबी-फ़ारसी ने नहीं बल्कि अंग्रेजी ने भी ख़ूब किया है।

रसोई (रस+ओई) का अर्थ रस उत्पन्न करने वाली है, क्योंकि हमारी रसोई में स्वास्थ्य को उत्तम बनाने वाले सभी रसयुक्त व्यंजन बनते थे। इसका स्थान किचन की किच-किच ने ले लिया। पर्यंक (पलंग) वह था जो चारों ओर से हमें गोद में लेता था (परि +अंक); पर अब यह लगभग पूरी तरह बेड से विस्थापित हो चुका है। महोदय(महान है उदय जिसका) और आदरणीय का स्थान sir ने ले लिया है। हाँ, अंतर बस इतना है कि अंग्रेजी का अतिक्रमण हमें दिख जाता है, अरबी-फ़ारसी का नहीं दिखता।

विचारणीय है कि जो संकट कल अरबी-फ़ारसी और अंग्रेजी की चुनौती के रूप में था, आज विविध बोलियों के पार्थक्य का है, हिंदी से इतर उनके स्वतंत्र स्वरूप की माँग को लेकर है। इस संदर्भ में ध्यान रखना होगा कि ये हिंदी के उपवन के बहुरंगी प्रसून सदृश हैं। एक-एक के अलग होने से उपवन उजड़ता चला जाएगा। विचारणीय यह भी है कि हिंदी और उसकी तमाम बोलियां अपभ्रंश के सात रूपों से विकसित हुई हैं जो एक-दूसरे से घुलमिल कर परस्पर पूरकता का अद्भुत उदाहरण बन गई हैं।

इसका समाधान करते हुए महात्मा गांधी का कथन ध्यातव्य है- 'जो वृत्ति इतनी वर्जनशील और संकीर्ण है कि हर बोली को चिरस्थायी बनाना और विकसित करना चाहती हो, वह राष्ट्र विरोधी और विश्व विरोधी है। मेरी विनम्र सम्मति में तमाम अविकसित और अलिखित बोलियों का बलिदान करके उन्हें हिंदी (हिंदुस्तानी) की बड़ी धारा में मिला देना चाहिए। यह देश हित के लिए दी गई कुर्बानी होगी, आत्महत्या नहीं।'

यंग इंडिया, 27 अगस्त 1925

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी देश की संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता को अगर अक्षुण्ण रखना है तो उसकी भाषिक संस्कृति को संरक्षित करना होगा, टूटने से बचाना होगा। और कोई दूसरा विकल्प नहीं है। समस्या यह है कि स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भी हम पर परतंत्रता की मनोदशा हावी रही। आम आदमी तक उसकी भाषा में सरकार और प्रशासन की बातें नहीं पहुँच सकीं। फिल्मों आदि में भी भारतीय भाषाओं को हीन दिखाया जाता रहा। कम पढ़े लिखे लोग भारतीय भाषाओं का प्रयोग और ज़्यादा पढ़े लिखे लोगों द्वारा उन विदेशी भाषाओं का प्रयोग दिखाया जाने लगा। एक स्वतंत्र राष्ट्र के स्वतंत्रचेता नागरिक की तरह हम क्यों नहीं सोच पाते कि बलात् आरोपित भाषाओं के परित्याग में ही राष्ट्र की भलाई है। परतंत्रता की यह बेड़ी भी काटनी है- यह शायद किसी दिन समवेत रूप में हमें समझ आ जाए!

मुगल मराठा संघर्ष

डॉ॰ अर्चना पाठ्या

दो शताब्दियों से भी अधिक समय तक भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकतर भू-भाग में स्थापित और विस्तृत रहा मुगल साम्राज्य 18वीं शताब्दी में तेजी से विघटित हो गया। 'मुग़ल शक्ति के पराभव के पश्चात् अंग्रेज़ों एवं मराठों के मध्य हुए 'आंग्ल-मराठा' युद्ध स्वयं को एक-दूसरे से सर्वश्रेष्ठ साबित करने के लिये किये गए संघर्ष थे, जिसमें अंततः अंग्रेजों की विजय हुई।

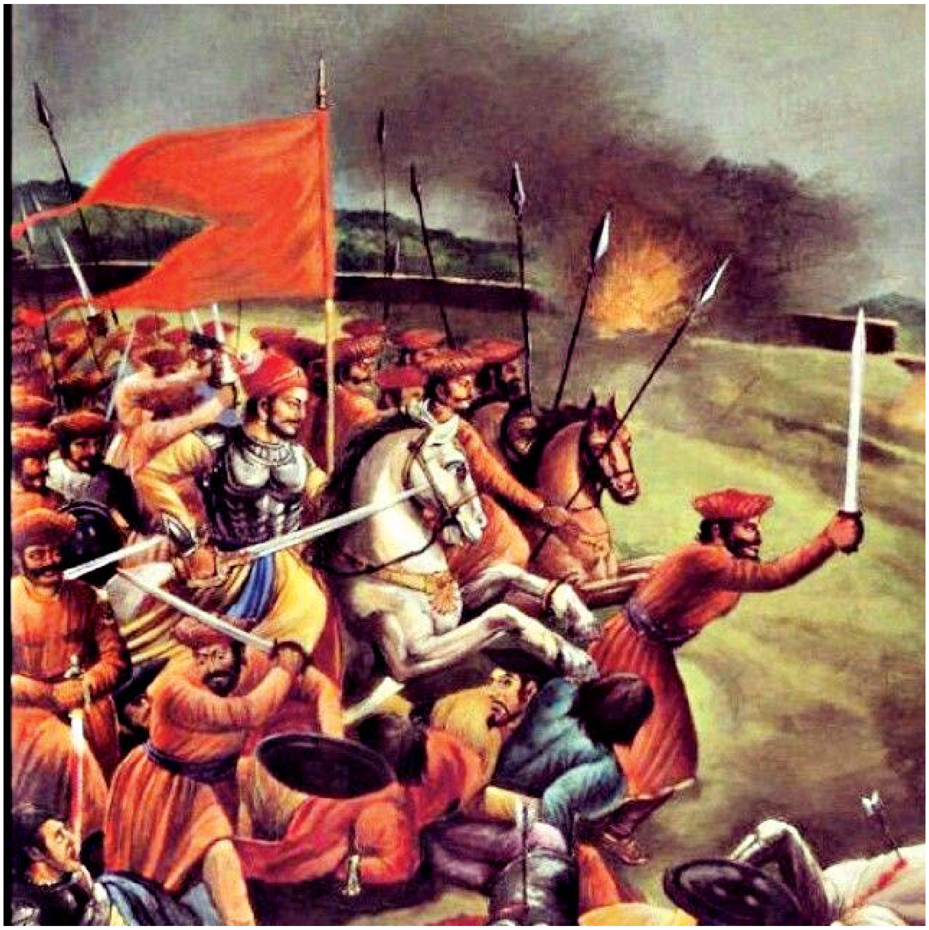

“उत्तर मुगलकालीन शासकों के शासन काल में मराठों के अतिरिक्त भारत में सिक्खों, राजपूतों, जाटों तथा रुहेलों के रूप में अन्य शक्तियाँ भी उछल-कूद कर रही थीं। मराठों तथा सिक्खों की तरह उन्होंने भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर डाली। सम्पूर्ण देश को विघटित करने वाली इन तमाम शक्तियों पर नियन्त्रण रखना मुगल शासकों के लिए सम्भव नहीं रह गया और देश विघटित होने लगा।”

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद्, लेखिका, कवयित्री एवं सामाजिक कार्यकर्ता।

17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक अकबर और शाहजहाँ की नीतियों पर टिका गौरवशाली मुगल साम्राज्य मजबूत एवं स्थिर था, किंतु औरंगजेब के कार्यकाल के दौरान, उसकी गलत नीतियों ने मुगल साम्राज्य की स्थिरता को क्षीण किया। फिर भी, सेना और प्रशासनिक व्यवस्था नामक दो स्तम्भ 1707 ई० (औरंगजेब की मृत्यु) तक सीधे पड़े खड़े रहे। उत्तराधिकार की लड़ाइयों और कमजोर शासकों ने 1707-1719 तक दिल्ली को अशांत रखा। यद्यपि मुहम्मदशाह ने 29 वर्षों की लंबी समयावधि तक शासन किया, तथापि उसकी अक्षमता के कारण मुगल साम्राज्य लगातार विघटित होता गया।

मराठा साम्राज्य एक भारतीय साम्राज्यवादी शक्ति थी जो 1645 से 1818 तक अस्तित्व में रही। मराठा साम्राज्य की नींव छत्रपती

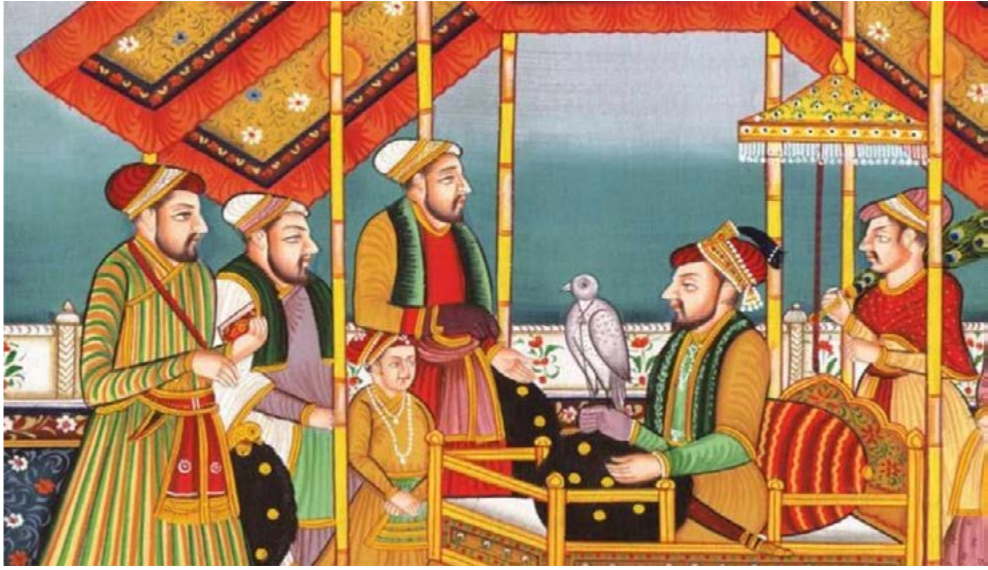

शिवाजी महाराज ने 1645 में डाली। उन्होने कई वर्ष मुगल साम्राज्य से संघर्ष किया। बाद में छत्रपती संभाजी महाराज के राज और अनके बलिदान की प्रेरणा स्वराज्य एक साम्राज्य बनकर उत्तर भारत तक बढाया, ये साम्राज्य 1818 तक चला और लगभग पूरे भारत में फैल गया। मुगल शासन की शक्तिहीनता के कारण भारत में आने वाली विदेशी जातियों और उनकी कम्पनियों को प्रभाव जमाने का मौका तो मिला ही, भारत की एक अन्य शक्ति मराठा भी अपना विकास करती गई और मुगल प्रशासन की संप्रभुता को चुनौती देकर अपनी प्रधानता कायम कर ली। उन्नीसवीं शताब्दी का एक अंग्रेज इतिहासकार लिखता है कि 'औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया।' इस समय दक्षिण भारत की यह दशा थी कि प्राचीन राज्य सब छिन्न-भिन्न हो चुके थे और मुगलों का सामना मराठों से था जो प्रतिदिन शक्तिशाली होते जा रहे थे और अन्त में मराठे मुगलों पर छा गये। मराठों में राजनीतिक जागरण एवं संगठन की पृष्ठभूमि का निर्माण छत्रपति शिवाजी ने किया था। औरंगजेब के शासन-काल में ही उन्होंने तोरण, रामगढ़, चाकन, कल्याणी आदि को जीतकर अपनी शक्ति बढ़ा ली तथा बीजापुर के सुल्तान, यहाँ तक की औरंगजेब से भी संघर्ष करके अपनी अजेय शक्ति का परिचय दिया। उन्होंने स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थापना कर ली जिसे विवश होकर मुगल सम्राट को भी मान्यता देनी पडी। शिवाजी के नेतृत्व में निर्मित मराठा प्रशासन मुगल साम्राज्य की कमजोरी का परिचायक है। शिवाजी के उत्तराधिकारियों-शम्भाजी, राजाराम, शिवाजी द्वितीय और शाहूजी ने मराठा राज्य का संचालन किया। उनके बाद पेशवाओं की प्रधानता मराठा राज्य में कायम हो गई। बालाजी विश्वनाथ (1713-20), बाजीराव प्रथम (1720-40) और बालाजी बाजीराव (1740-61) नामक पेशवाओं ने मराठा शक्ति को अपने संरक्षण में कायम रखा। यद्यपि मराठे अहमदशाह अब्दाली के हाथों पराजित हुए, तथापि उन्होंने भारत की एक महान शक्ति के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखा। प्लासी की लड़ाई के बाद वे औरंगजेब के एक बड़े विरोधी सिद्ध हुए। उत्तर मुगलकालीन शासकों के शासन काल में मराठों के अतिरिक्त भारत में सिक्खों, राजपूतों, जाटों तथा रुहेलों के रूप में अन्य शक्तियाँ भी उछल-कूद कर रही थीं। मराठों तथा सिक्खों की तरह उन्होंने भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर डाली। सम्पूर्ण देश को विघटित करने वाली इन तमाम शक्तियों पर नियन्त्रण रखना मुगल शासकों के लिए सम्भव नहीं रह गया और देश विघटित होने लगा। देश की ऐसी अनैक्यपूर्ण स्थिति में भारत में विदेशी जातियों तथा कम्पनियों का आगमन हुआ और इन नवागत कम्पनियों को अपना अधिकार-क्षेत्र विस्तृत करने का अवसर मिला उत्तराधिकार के कलह, कृषि संकट की वजह से स्थानीय विद्रोह, धार्मिक असहिष्णुता का उत्कर्ष और ब्रिटिश उपनिवेशवाद से कमजोर हुए साम्राज्य का अंतिम सम्राट बहादुर ज़फ़र शाह था, जिसका शासन दिल्ली शहर तक सीमित रह गया था। अंग्रेजों ने उसे कैद में रखा और 1857 के भारतीय विद्रोह के बाद ब्रिटिश द्वारा म्यानमार निर्वासित कर दिया। 1556 में, जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर, जो महान अकबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, के पदग्रहण के साथ इस साम्राज्य का उत्कृष्ट काल शुरू हुआ और सम्राट औरंगज़ेब के निधन के साथ समाप्त हुआ, हालाँकि यह साम्राज्य और 150 साल तक चला।

सवाल यह है कि मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद की घटनाएँ किस हद तक ज़िम्मेदार थीं और किस हद तक औरंगज़ेब की ग़लत नीतियाँ? इस बात को लेकर इतिहासकारों में काफ़ी मतभेद रहा है। हालाँकि औरंगज़ेब को इसके लिए ज़िम्मेदार होने से पूर्णतया मुक्त नहीं किया जाता, इतने विशाल मुगल साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण रहे- मुगलों का शासन वैयक्तिक रूप से निरंकुश था और इसीलिये इसकी सफलता शासन करने वाले निरंकुश शासक के चरित्र पर निर्भर थी। औरंगजेब के बाद के मुगल शासक प्रभावहीन थे, उन्होंने राज्य के प्रशासन की उपेक्षा की। उत्तराधिकार के एक निश्चित कानून के अभाव के कारण सदैव उत्तराधिकार के प्रश्न पर युद्ध हुए, जिसने साम्राज्य को कमजोर किया। साम्राज्य की सीमाएँ काफी व्यापक थी परंतु प्रहरी अक्षम और कमजोर। औरंगजेब की धार्मिक नीति ने राजपूतों, सिखों, जाटों और मराठों को नाराज कर दिया। इस नाराजगी ने विभिन्न विद्रोहों का रूप लिया। सेना की बिगड़ी स्थिति, निरंतर युद्ध, कृषि में विकास की गति का स्थिर होना, और व्यापार एवं उद्योग में ह्रास साम्राज्य के आर्थिक और औरंगजेब की दक्कन नीति पूरी तरह सफल रही और काफी हद तक मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य को ध्वस्त करने में बड़ा योगदान दिया। अंत में, यूरोपीय शक्तियों के आगमन, जिन्होंने भारत की तात्कालिक स्थितियों एवं दशाओं का लाभ उठाया, ने भी मुगल साम्राज्य के विघटन को अंजाम तक पहुँचाया।

राजनीतिक क्षेत्र में औरंगज़ेब ने कई गंम्भीर ग़लतियाँ की। किस प्रकार वह मराठों के आंदोलन के सही स्वरूप को नहीं समझ सका और शिवाजी को मित्र बनाने की जयसिंह की सलाह अनदेखी कर दी। शम्भाजी की हत्या उसकी एक और बड़ी ग़लती थी। इसके बाद मराठों का ऐसा कोई प्रभावशाली नेता नहीं बचा, जिससे औरंगज़ेब बातचीत या समझौता कर सकता। उसे विश्वास था कि बीजापुर और गोलकुण्डा को अपने क़ब्ज़े में करने के बाद मराठे उससे दया की भीख माँगेंगे और उसकी शर्तों को स्वीकार करने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं रह जायेगा। औरंगज़ेब मराठों के 'स्वराज्य' को छोटा करना और उनसे निष्ठा का वचन चाहता था। जब औरंगज़ेब ने अपनी ग़लती महसूस की और मराठों से बातचीत शुरू की तब 'चौथ' तथा 'सरदेशमुखी' की माँग आड़े आ गई। बहुत हद तक इस बाधा को भी दूर किया गया। 1703 में मराठों और औरंगज़ेब के बीच समझौता क़रीब-क़रीब हो ही गया था, लेकिन औरंगज़ेब, शाहू तथा मराठा सरदारों के प्रति अंत तक अविश्वासी बना रहा।

इस तरह औरंगज़ेब मराठों की समस्या का समाधान ढूँढने में असफल रहा और अंत तक इसका शिकार बना रहा। उसने कई मराठा सरदारों को मनसब प्रदान किए। यहाँ तक की उच्चतम स्तर पर राजपूत सरदारों की अपेक्षा मराठा सरदारों के पास अधिक मनसब थे। लेकिन इसके बावजूद मराठा सरदारों पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया गया। राजपूतों की तरह उन्हें ज़िम्मेदारी अथवा विश्वास का कोई पद नहीं सौंपा गया। इस प्रकार मराठे मुग़ल राजनीतिक व्यवस्था के अभिन्न अंग कभी नहीं बन सके। यदि औरंगज़ेब शिवाजी, शंभाजी या शाहू से भी कोई राजनीतिक समझौता कर लेता तो बहुत बड़ा फ़र्क़ पड़ता। मुग़ल साम्राज्य के पतन के दक्कनी तथा अन्य युद्धों और उत्तर भारत से बहुत कम समय के लिए औरंगज़ेब का ग़ैरहाज़िर होना भी बहुत महत्त्वपूर्ण कारण थे। औरंगज़ेब ने कई ग़लत नीतियाँ अपनाई थीं और उसमें कई व्यक्तिगत कमज़ोरियाँ भी थीं जैसे- वह अत्यधिक संदेही तथा संकीर्ण विचारों का था। लेकिन इसके बावजूद मुग़ल साम्राज्य बहुत शक्तिशाली था तथा उसकी सैनिक और प्रशासनिक व्यवस्था ठोस थी। मुग़ल सेना दक्कन के पहाड़ी क्षेत्रों में मराठा छापामारों के हमलों का सामना करने में भले ही असफल रही हो और मराठों के क़िलों पर मुश्किल से क़ब्ज़ा कर सकी हो और क़ब्ज़ा कर लेने के बाद उन्हें अधिक काल तक अपने अधीन रखने में असफल भी रही हो, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि उत्तरी भारत के मैदानों तथा कर्नाटक के विस्तृत पठार में मुग़ल तोपख़ाना अभी भी सबसे अधिक प्रभावशाली था। औरंगज़ेब की मृत्यु के चालीस साल बाद भी जब मुग़ल तोपख़ाने कि शक्ति और क्षमता घट गई, मराठे खुले मैदान में उसका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। लम्बे समय तक अराजकता, युद्ध तथा मराठों के हमलों से दक्कन की आबादी भले ही कम हुई हो और वहाँ का व्यापार, उद्योग तथा कृषि जड़भूत हो गया हो, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि साम्राज्य के मुख्य भाग उत्तरी भारत में, जो आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण था, मुग़ल प्रशासन अत्यन्त प्रभावशाली बना हुआ था। यहाँ तक की ज़िलों के स्तर पर मुग़ल प्रशासन इतना कारगर सिद्ध हुआ कि इसके कई तत्व ब्रिटिश प्रशासन में सम्मिलित किए गए। सैनिक पराजयों और औरंगज़ेब की ग़लतियो के बावजूद राजनीतिक तौर पर लोगों के दिलों-दिमाग पर मुग़ल वंश का प्रभाव छाया रहा।

जहाँ तक राजपूतों का सवाल है, मारवाड़ से मुग़लों का संघर्ष इसलिए आरम्भ नहीं हुआ था कि औरंगज़ेब ने इस बात का प्रयास किया कि हिन्दुओं का कोई प्रभावशाली नेता न रहे। बल्कि इसलिए की नासमझी के कारण उसने दो मुख्य प्रतिद्वन्द्वियों के बीच मारवाड़ के राज्य को विभाजित कर दोनों कि दुश्मनी मोल ले ली। इसके अलावा इस क़दम से मेवाड़ का शासक भी उससे क्षुब्ध हो गया, क्योंकि वह मुग़ल हस्तक्षेप को बहुत बड़ा ख़तरा समझता था। इसके बाद मारवाड़ तथा मेवाड़ के साथ जो लम्बा संघर्ष चला, उससे मुग़ल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। यह बात और है कि 1681 के बाद इस संघर्ष का कोई विशेष सामरिक महत्व नहीं रहा। साम्राज्य के विघटन में उन्होंने न तो कोई भूमिका निभाई और न ही वे उसके पतन की प्रक्रिया को रोक सके।

मुग़ल साम्राज्य का पतन और विघटन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा संगठनात्मक कारणों से हुआ। अकबर की नीतियों से विघटन के तत्वों पर कुछ समय तक प्रभावशाली नियंत्रण रखा जा सका, लेकिन समाज व्यवस्था में कोई मूलभूत परिवर्तन करना उसके भी बस के बाहर की बात थी। जब तक औरंगज़ेब ने सिंहासन संम्भाला, विघटन की सामाजिक और आर्थिक शक्तियाँ उभर कर और शक्तिशाली हो गईं थीं। इस व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करने के लिए न तो औरंगज़ेब में राजनीतिक योग्यता और न ही दूरदर्शिता थी। वह ऐसी नीतियों के पालन में भी असमर्थ रहा, जिनसे परस्पर विरोधी तत्वों पर कुछ समय के लिए रोक लगाई जा सकती। इस प्रकार औरंगज़ेब न केवल परिस्थितियों का शिकार था, बल्कि उसने स्वयं ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने में योग दिया जिनका वह स्वयं शिकार बना।

मराठों के ख़िलाफ़ दक्कनी राज्यों को संगठित करने की असफलता के लिए औरंगज़ेब की आलोचना की जाती है। यह भी कहा जाता है कि उन्हें जीतकर औरंगज़ेब ने अपने साम्राज्य को इतना बड़ा कर लिया था कि यह अपने ही भार के कारण ढह गया मराठों की बढ़ती शक्ति, गोलकुण्डा के मदन्ना तथा अख़न्ना द्वारा शिवाजी को दिए गए समर्थन और इस भय से कि बीजापुर पर शिवाजी तथा गोलकुण्डा, जिस पर मराठों का प्रभाव था, का प्रभुत्व क़ायम हो जाएगा, औरंगज़ेब दक्कन में अभियान चलाने पर विवश हो गया था। औरंगज़ेब ने शीघ्र ही महसूस किया कि बीजापुर तथा गोलकुण्डा को क़ब्ज़े में किये बिना मराठों से टक्कर लेना आसान नहीं है। संम्भतः औरंगज़ेब यदि अपने बड़े लड़के

शाहआलम की यह बात मान लेता कि बीजापुर तथा गोलकुण्डा के साथ समझौता किया जाना चाहिए और उनके कुछ क्षेत्रों को ही साम्राज्य में मिलाया जाना चाहिए तो औरंगज़ेब के लिए बहुत लाभदायक होता। शाहआलम इस पक्ष में भी था कि बहुत दूर होने के कारण कर्नाटक पर प्रभावशाली नियंत्रण रखना अंसम्भव है इसलिए उसे वहीं के अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया जाना चाहिए। उस समय बीजापुर आपसी संघर्ष तथा मुग़लों के आक्रमण से परेशान था। बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने बहुत से दुर्गों से अपनी सेना हटाकर उन्हें स्थानीय शासकों या सामन्तों के हाथ सौंप दिया था। जब आदिलशाह बीमार पड़ा तो बीजापुर में अराजकता फैल गई और शिवाजी महाराज ने अवसर का लाभ उठाकर बीजापुर में प्रवेश का निर्णय लिया। शिवाजी महाराज ने इसके बाद के दिनों में बीजापुर के दुर्गों पर अधिकार करने की नीति अपनाई। सबसे पहला दुर्ग था रोहिदेश्वर का दुर्ग।

शिवाजी के बीजापुर तथा मुगल दोनों शत्रु थे। उस समय शहज़ादा औरंगजेब दक्कन का सूबेदार था। इसी समय 1 नवम्बर 1656 को बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह की मृत्यु हो गई जिसके बाद बीजापुर में अराजकता का माहौल पैदा हो गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर औरंगज़ेब ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया और शिवाजी ने औरंगजेब का साथ देने की बजाय उसपर धावा बोल दिया। उनकी सेना ने जुन्नार नगर पर आक्रमण कर ढेर सारी सम्पत्ति के साथ 200 घोड़े लूट लिये। अहमदनगर से 700 घोड़े, चार हाथी के अलावा उन्होंने गुण्डा तथा रेसिन के दुर्ग पर भी लूटपाट मचाई। इसके परिणामस्वरूप औरंगजेब शिवाजी से खफ़ा हो गया और मैत्री वार्ता समाप्त हो गई। शाहजहां के आदेश पर औरंगजेब ने बीजापुर के साथ सन्धि कर ली और इसी समय शाहजहां बीमार पड़ गया। उसके व्याधिग्रस्त होते ही औरंगज़ेब उत्तर भारत चला गया और वहां शाहजहां को कैद करने के बाद मुगल साम्राज्य का शाह बन गया। इधर औरंगजेब के आगरा लौट जाने के बाद बीजापुर के सुल्तान ने भी राहत की सांस ली। अब शिवाजी ही बीजापुर के सबसे प्रबल शत्रु रह गए थे।

उत्तर भारत में बादशाह बनने की होड़ खत्म होने के बाद औरंगजेब का ध्यान दक्षिण की तरफ गया। वो शिवाजी की बढ़ती प्रभुता से परिचित था और उसने शिवाजी पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। शाइस्का खाँ अपने 1,50,000 फ़ौज लेकर सूपन और चाकन के दुर्ग पर अधिकार कर पूना पहुँच गया। उसने ३ साल तक मावल में लुटमार कि इस जीत से शिवाजी की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। 6 साल शाईस्ता खान ने अपनी 1,50,000 फ़ौज लेकर राजा शिवाजी का पुरा मुलुख जलाकर तबाह कर दिया था। इस युद्ध में शिवाजी को हानि होने लगी और हार की सम्भावना को देखते हुए शिवाजी ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जून 1665 में हुई इस सन्धि के मुताबिक शिवाजी 23 दुर्ग मुग़लों को दे देंगे और इस तरह उनके पास केवल 12 दुर्ग बच जाएँगे। इन 23 दुर्गों से होने वाली आमदनी 4 लाख हूण सालाना थी। बालाघाट और कोंकण के क्षेत्र शिवाजी को मिलेंगे पर उन्हें इसके बदले में 13 किस्तों में 40 लाख हूण अदा करने होंगे। इसके अलावा प्रतिवर्ष 5 लाख हूण का राजस्व भी वे देंगे। शिवाजी स्वयं औरंगजेब के दरबार में होने से मुक्त रहेंगे पर उनके पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में खिदमत करनी होगी। बीजापुर के ख़िलाफ़ शिवाजी मुगलों का साथ देंगे। शिवाजी को आगरा बुलाया गया जहाँ उन्हें लगा कि उन्हें उचित सम्मान नहीं मिल रहा है। इसके विरोध में उन्होंने अपना रोश भरे दरबार में दिखाया और औरंगजेब पर विश्वासघात का आरोप लगाया। औरंगजेब इससे क्षुब्ध हुआ और उसने शिवाजी को नजरबन्द कर दिया और उनपर 5000 सैनिकों के पहरे लगा दिये। कुछ ही दिनों बाद (18 अगस्त 1666 को) शिवाजी को मार डालने का इरादा औरंगजेब का था। लेकिन अपने अदम्य साहस ओर युक्ति के साथ शिवाजी और सम्भाजी दोनों इससे भागने में सफल रहे जसवंत सिंह के द्वारा पहल करने के बाद सन् 1668 में शिवाजी ने मुगलों के साथ दूसरी बार सन्धि की। सन् 1674 तक शिवाजी ने उन सारे प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था जो पुरन्दर की सन्धि के अन्तर्गत उन्हें मुग़लों को देने पड़े थे। पश्चिमी महाराष्ट्र में स्वतंत्र हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के बाद शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक करना चाहा, परन्तु मुस्लिम सैनिको ने ब्राहमणों को धमकी दी कि जो भी शिवाजी का राज्याभिषेक करेगा उनकी हत्या कर दी जायेगी। जब ये बात शिवाजी तक पहुंची की मुगल सरदार ऐसे धमकी दे रहे है तब शिवाजी ने इसे एक चुनौती के रुप मे लिया और कहा की अब वो उस राज्य के ब्राह्मण से ही अभिषेक करवायेंगे जो मुगलों के अधिकार में है। राज्याभिषेक के 12 दिन बाद ही उनकी माता का देहांत हो गया था इस कारण से 4 अक्टूबर 1674 को दूसरी बार शिवाजी ने छत्रपति की उपाधि ग्रहण की। इस समारोह में हिन्दवी स्वराज की स्थापना का उद्घोष किया गया था। विजयनगर के पतन के बाद दक्षिण में यह पहला हिन्दू साम्राज्य था। एक स्वतंत्र शासक की तरह उन्होंने अपने नाम का सिक्का चलवाया।

1657 ईसवी तक शिवाजी के मुग़ल साम्राज्य से शांतिपूर्ण सम्बन्ध थे। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के खंडहरों पर मराठों का साम्राज्य मज़बूत हुआ था। उन्हीं परिस्थितियों में ईस्ट इंडिया कंपनी भी एक शक्तिशाली संगठन के रूप में अपने पैर जमा चुकी थी। अब इन दोनों शक्तियों के मध्य मुद्दा स्वयं के अधिकारों में वृद्धि करने, क्षेत्र पर वर्चस्व स्थापित करने और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ साबित करने का था। हितों के इन टकरावों की परिणति तीन आंग्ल-मराठा युद्धों के रूप में हुई। यद्यपि मराठा उस समय मुगलों से अधिक शक्तिशाली थे परंतु अंग्रेज़ों से सैनिक व्यवस्था, नेतृत्व, कूटनीति तथा साधनों में बहुत पीछे थे। फलस्वरूप मराठों को अंग्रेज़ों से हार मिली।

हिन्द स्वराज्य की सजग प्रहरी
वीरांगना ताराबाई

नीता चौबीसा

जब विश्व पर तलवार के जोर पर इस्लामोफोबिया अपनी धाक जमा रहा था तभी भारत मे औरंगजेब के खूनी करतबी खेल में मन्दिर ढहाए जा रहे थे और जंग की दरन्दगी से अनेक रियासतों को मुगल साम्राज्य का हिस्सा बनने पर मजबूर किया जा रहा था। उस समय भी स्वराज का परचम लहराने की कसम खाने वाले कतिपय स्वातंत्र प्रिय जातियों में एक थे मराठे जिन्होंने दीर्घकाल तक मुगलों से लोहा लिया। और बात जब मुगल मराठा संघर्ष की हो तो शिवाजी महाराज की बात न हो यह सम्भव ही नही। उनका योगदान तो अविस्मरणीय रहा यह सभी जानते है किंतु यहाँ बात उस महत्वपूर्ण सशक्त मराठा नारी की करूँगी जिसने औरंगजेब जैसे लड़ाके गिद्ध को भी नाकों चने चबवा दिए थे परन्तु फिर भी भारतीय इतिहास में उसकी असाधारण नेतृत्व क्षमता और प्रतिभा के साथ न्याय नही हुआ और वह उपेक्षित ही रह गई।

"पति राजाराम की अल्पायु में ही (1689-1700) निधन के पश्चात् ताराबाई ने अपने चार वर्ष के पुत्र शिवाजी तृतीय का राज्याभिषेक कराया और स्वयं मराठा साम्राज्य की संरिक्षका बनीं। 82 वर्ष की आयु तक पहुँच चुका औरंगज़ेब दक्षिण भारत में बुरी तरह उलझ गया था और थक भी गया था। अंततः जब सन 1700 में उसे यह खबर मिली की किसी बीमारी के कारण राजाराम की मृत्यु हो गई है।"

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं लेखिका।

वीरांगना मराठा नारी थी-छत्रपति शिवाजी महाराज की बहू और उनके छोटे बेटे राजाराम की पत्नी महारानी ताराबाई जो शिवजी की पुत्रवधु थी। महारानी ताराबाई का जन्म 14 अप्रैल, 1675 को छत्रपति शिवाजी महाराज के सर सेनापति हंबीरराव मोहिते के घर हुआ था। आठ वर्ष की अल्पायु में ही ताराबाई का विवाह छत्रपति शिवाजी के बेटे छत्रपति राजाराम महाराज के साथ हो गया था। इनका पूरा नाम महारानी ताराबाई भोंसले था।

शिवाजी महाराज की मृत्यु के उपरांत मराठों के केंद्रीय शक्ति के अभाव में मराठा शक्ति एक बार कमजोर पड़ गई जिसके कारण मुगलों की भारीभरकम सेना की पूरी शक्ति के आगे धीरे-धीरे मराठों के हाथों से एक-एक करके किले निकलने लगे और मराठों ने ऊँचे किलों और घने जंगलों को अपना ठिकाना बना लिया। औरंगजेब ने विपक्षी सेना में रिश्वत बाँटने का खेल शुरू किया और गद्दारों की वजह से संभाजी महाराज को संगमेश्वर के जंगलों के 1689 में औरंगजेब ने पकड़ लिया। औरंगजेब ने संभाजी से इस्लाम कबूल करने को कहा, संभाजी ने औरंगजेब से कहा कि यदि वह अपनी बेटी की शादी उनसे करवा दे तो वह इस्लाम कबूल कर लेंगे, यह सुनकर औरंगजेब आगबबूला हो उठा। उसने संभाजी की जीभ काट दी और आँखें फोड़ दीं, संभाजी को अत्यधिक यातनाएँ दी गईं, लेकिन उन्होंने अंत तक इस्लाम कबूल नहीं किया और फिर औरंगजेब ने संभाजी की हत्या कर दी औरंगजेब लगातार किले फतह करता जा रहा था। संभाजी का दुधमुंहे बच्चा 'शिवाजी द्वितीय' अब आधिकारिक रूप से मराठा राज्य का उत्तराधिकारी था। औरंगजेब ने इस बच्चे का अपहरण करके उसे अपने हरम में रखने का फैसला किया ताकि भविष्य में सौदेबाजी की जा सके। चूँकि औरंगजेब 'शिवाजी' नाम से ही चिढता था, इसलिए उसने इस बच्चे का नाम बदलकर 'शाहू'रख दिया और अपनी पुत्री जीनतुन्निसा को सौंप दिया कि वह उसका पालन-पोषण करे। औरंगजेब यह सोचकर बेहद खुश था कि उसने लगभग मराठा साम्राज्य और उसके उत्तराधिकारियों को खत्म कर दिया है और बस अब उसकी विजय निश्चित ही है।लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं पाया।

संभाजी की मृत्यु और उनके पुत्र के अपहरण के बाद संभाजी के छोटे भाई राजाराम अर्थात ताराबाई के पति ने मराठा साम्राज्य के सूत्र अपने हाथ में लिए। उन्होंने महसूस किया कि इस क्षेत्र में रहकर मुगलों की इतनी बड़ी सेना से लगातार युद्ध करना संभव नहीं है, इसलिए उन्होंने अपने पिता शिवाजी से प्रेरणा लेकर, अपने विश्वस्त साथियों के साथ लिंगायत धार्मिक समूह का भेष बदला और गाते-बजाते आराम से सुदूर दक्षिण में जिंजी के किले में अपना डेरा डाल दिया। इसके बाद चमत्कारिक रूप से राजाराम ने जिंजी के किले से ही मुगलों के खिलाफ जमकर गुरिल्ला युद्ध की शुरुआत की। उस समय उनके सेनापति थे रामचंद्र नीलकंठ। राजाराम की सेना ने छिपकर वार करते हुए एक वर्ष के अंदर मुगलों की सेना के दस हजार सैनिक मार गिराए और उनका लाखों रूपए खर्च करा दिया। औरंगज़ेब बुरी तरह परेशान हो उठा। दक्षिण की रियासतों से औरंगज़ेब को मिलने वाली राजस्व की रकम सिर्फ दस प्रतिशत ही रह गई थी, क्योंकि राजाराम की सफलता को देखते हुए बहुत सी रियासतों ने उस गुरिल्ला युद्ध में राजाराम का साथ देने का फैसला किया।राजाराम 1697 में अपने समस्त कुनबे और विश्वस्तों के साथ पुनः महाराष्ट्र पहुँचे और उन्होंने सातारा को अपनी राजधानी बनाया।82 वर्ष की आयु तक पहुँच चुका औरंगज़ेब दक्षिण भारत में बुरी तरह उलझ गया था और थक भी गया था। अंततः सन 1700 में उसे यह खबर मिली की किसी बीमारी के कारण राजाराम की मृत्यु हो गई है।

पति राजाराम की अल्पायु में ही (1689-1700) के निधन के पश्चात् ताराबाई ने अपने चार वर्ष के पुत्र शिवाजी तृतीय का राज्याभिषेक कराया और स्वयं मराठा साम्राज्य की संरिक्षका बनीं।82 वर्ष की आयु तक पहुँच चुका औरंगज़ेब दक्षिण भारत में बुरी तरह उलझ गया था और थक भी गया था। अंततः जब सन 1700 में उसे यह खबर मिली की किसी बीमारी के कारण राजाराम की मृत्यु हो गई है। अब मराठाओं के पास राज्याभिषेक के नाम पर सिर्फ विधवाएँ और दो छोटे-छोटे बच्चे ही बचे थे, तब औरंगजेब पुनः प्रसन्न हुआ कि चलो अंततः मराठा साम्राज्य समाप्त होने को है।लेकिन वह फिर से गलत साबित हुआ, क्योंकि राजाराम की पच्चीस वर्षीय रानी ताराबाई ने सत्ता के सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिए और अपने अपने चार वर्षीय पुत्र शिवाजी द्वितीय को राजा घोषित कर दिया।अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए ताराबाई ने मराठा सरदारों को साम-दाम-दण्ड-भेद सभी पद्धतियाँ अपनाते हुए अपनी तरफ मिलाया और राजाराम की दूसरी रानी राजसबाई को जेल में डाल दिया।

उस समय तक औरंगजेब दक्कन की राजनीति मे शमशीर के बल पर इस्लामोफोबिया का गढ़ बना चुका था और यह समझ रहा था कि शिवाजी शम्भाजी और राजाराम जैसे मराठा सरदारों की मृत्यु के बाद और अन्य मराठा सरदारों की सत्तासीन की आपसी होड़ में शायद मराठे शक्तिहीन हो कर अपने हिन्द स्वराज्य का स्वप्न भूल जाएंगे।पर ऐसे समय मे बिखरी हुई मराठा शक्ति को संगठित कर हिन्द स्वराज्य हेतु कटिबद्ध हुई मराठा वीरांगना ताराबाई ! वह एक अदम्य उत्साह वाली,अद्भुद नेतृतव क्षमता और दृढ़ संकल्प वाली महिला योद्धा थी।तत्कालीन लेखक ख़फ़ी ख़ाँ जैसे कटु आलोचक तक ने यह स्वीकार किया है कि, 'वह चतुर तथा बुद्धिमती स्त्री थी तथा दीवानी एवं फ़ौजी मामलों की अपनी जानकारी के लिए अपने पति के जीवन काल में ही ख्याति प्राप्त कर चुकी थी।'

ख़फ़ी खा ने लिखा है कि ताराबाई ने अपने पति की मृत्यु के शोकसागर में डूब कर मरने के बजाय अपने श्वसुर शिवाजी के स्वप्नों,आदर्शों,मूल्यो को प्राथमिकता देते हुए मराठों की कमान सम्हाली और निराश हताश मराठा सेना की प्रेरणा स्त्रोत बन कर उभरी,उनमें नवीन प्रेरणा भरी और औरंगजेब के सामने स्वतन्त्रता

की चीर मशाल अपने हाथों में ले कर डट कर खड़ी हो गई।उसने अपने पति राजाराम के जीवनकाल में ही उसके संग मिल कर गुरिल्ला युद्ध पद्धति की समस्त तकनीक सीख ली थी।वह एक श्रेष्ठ तलवारबाज, तीरंदाजी एव प्रशासन आदि में पारंगत थी!अपनी योग्यता और दूरदर्शिता के बल पर उसने अनेक मराठा सरदारों का समर्थन प्राप्त कर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया था।'

अन्य सूत्रों की जानकारी में भी 1700 से 1707 ई0 तक के मराठा संकटकाल में ताराबाई ने मराठा राज्य की एकसूत्रता और अखण्डता बनाये रखकर उसकी अमूल्य सेवा की।मराठा साम्राज्य की संरक्षिका के रूप में उन्होंने मुग़लों को कई बार युद्ध में परास्त किया। हालाँकि औरंगज़ेब ने पन्हाला, विशालगढ़ और सिंहगढ़ पर आक्रमण कर उन पर अपना कब्ज़ा कर लिया था और मराठा साम्राज्य कमज़ोर पड़ने लगा था, परंतु वीरांगना ताराबाई इन विषम परिस्थितियों में भी तनिक भी विचलित नहीं हुईं और मराठा सेना में जोश भरती कर मुगलों से लोहा लेती रही। ताराबाई के नेतृत्व में मराठा सैनिकों ने मुग़ल साम्राज्य के अधीन कई क्षेत्रों पर आक्रमण किया। 1703 में बरार, 1704 में सतारा और 1706 में गुजरात पर किए गए आक्रमणों में उन्हें अभूतपूर्व सफलता, धन तथा सम्मान प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त मराठा सैनिकों ने मुग़ल साम्राज्य वाले बुरहानपुर, सूरत और भरूच नगरों को भी लूटा। इस तरह एक बार फिर मराठे अपने सम्पूर्ण क्षेत्र को विजित करने में सफल रहे। ताराबाई ने भी औरंगजेब की रिश्वत तकनीक अपना ली और विरोधी सेनाओं के कई गुप्त राज़ मालूम कर लिए। धीरे-धीरे ताराबाई ने अपनी सेना और जनता का विश्वास अर्जित कर लिया। औरंगजेब जो कि थक चुका था, उसके सामने मराठों की शक्ति पुनः दिनोंदिन बढ़ने लगी थी।ताराबाई ने औरंगजेब को जिस रणनीति से सबसे अधिक चौंकाया और तकलीफ दी, वह थी गैर-मराठा क्षेत्रों में घुसपैठ। चूँकि औरंगजेब का सारा ध्यान दक्षिण और पश्चिमी घाटों पर लगा था, इसलिए मालवा और गुजरात में उसकी सेनाएँ कमज़ोर हो गई थीं। ताराबाई ने सूरत की तरफ से मुगलों के क्षेत्रों पर आक्रमण करना शुरू किया और धीरे-धीरे (वर्तमान पश्चिमी मप्र)में आगे बढ़ते हुए कई स्थानों पर अपनी वसूली चौकियां स्थापित कर लीं। ताराबाई ने इन सभी क्षेत्रों में अपने कमाण्डर स्थापित कर दिए और उन्हें सुबेदार, कमाविजदार, राहदार, चिटणीस जैसे विभिन्न पदानुक्रम में व्यवस्थित भी किया ताराबाई ने दक्षिणी कर्नाटक में अपना राज्य स्थापित किया। उसने पूरे छ वर्षों तक अपने पराक्रम के बल पर मुगल सेना को रोके रखा और औऱंगजेब जैसे महाक्रूर आतताई शासक के दक्कन पर विजय के स्वप्न को न केवल चकनाचूर किया अपितु औरंगजेब को 1707 में दक्कन पर अधिकार के स्वप्न के साथ ही दक्कन में ही गाढ़ दिया।अपने जीवन के अनमोल पच्चीस वर्षों को दक्कन में लगा कर भी उसकी अंतिम ख्वाहिश को वह पूरी न कर सका और दक्कन का अभियान उसके लिए नासूर बन गया।परन्तु यह अत्यंत विस्मयजन्य तथ्य है कि तलवार के बल पर सम्पूर्ण उत्तर पश्चमी भारत मे इस्लामोफोबिया की धूम मचाने वाले औरंगजेब को दक्षिण में उसके इस सपने को तोड़ने वाला योद्धा कोई और नहीं, बल्कि एक मराठा वीरांगना थी, जिसका नाम था 'ताराबाई' था।ताराबाई के बारे में इतिहास की पुस्तकों में अधिक उल्लेख नहीं मिलता है, क्योंकि वास्तव में उसने छत्रपति शिवाजी की तरह कोई साम्राज्य खड़ा नहीं किया, परन्तु इस बात का श्रेय उसे अवश्य दिया जाना चाहिए कि यदि ताराबाई नहीं होतीं तो न सिर्फ मराठा साम्राज्य का इतिहास, बल्कि औरंगज़ेब द्वारा स्थापित मुग़ल साम्राज्य के बाद आधुनिक भारत का इतिहास भी कुछ और ही होता।

कालांतर का मराठा इतिहास और भी उलझा हुआ है पर ताराबाई वह ऐतिहासिक नायिक है जिसने अपने रहते स्वराज की जो ज्योति शिवाजी महाराज ने जलाई थी उसे बुझने न दिया।इस वीरांगना ने अकेले दम पर जहाँ एक तरफ औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली मुगल बादशाह को बुरी तरह थकाया, हराया और परेशान किया, वहीं दूसरी तरफ धीरे-धीरे मराठा साम्राज्य को भी आगे बढाती रहीं, और एक समय ऐसा आया कि मराठों का साम्राज्य दक्षिण में तंजावूर से लेकर अटक (आज का अफगानिस्तान) तक फैल गया था।लेकिन हमें अक्सर इस इतिहास से वंचित रखा जाता है और विदेशी हमलावरों तथा लुटेरों को विजेता, दयालु और महत्ता को बताया जाता है,किंतु ताराबाई जैसी नायिका वीरांगनाओं को नही यह विचारणीय है कि ऐसा क्यों है ? हिन्द के दक्षिणाकाश को भगवा करती स्वतंत्रता की ध्वज वाहिका, स्वराज्य की अलख की लौ को जगमग करती छत्रपति शिवजी महराज की बहू वीरांगना महारानी ताराबाई पर भारत की वह वन्दनीय योद्धा है जिन्होंने क्रूर, मतान्ध औरंगज़ेब को उस के अरमानों के साथ दक्षिण में ही दफन करते हुए अन्य सभी मत मज़हब वाले लोगों को निर्भयता प्रदान की।पर यह कैसी विडंबना है कि भारतीय इतिहास में जोरो शोरो से औरंगजेब की तो चर्चा होती है किंतु अमर हुतात्मा और वीरांगना ताराबाई की नही होती।

ताराबाई ही मध्यकाल की वह वीरांगना थी जो हिन्द स्वराज की सजग प्रहरी बन कर औरंगजेब जैसे बादशाह को परिवार और राजधानी से दूर सुदूर दक्षिण में उसके स्वप्न के साथ ही न केवल वर्षों रोके रखा वरन वही गढ़ दिया था,वह भी उस मध्यकाल में जब भारतीय स्त्रियों को पर्दे में रोदन करने वाली बताया जाता है।ताराबाई स्त्री की स्वतन्त्र चेतना प्रज्ञा और वीरता पराक्रम की गाथा कहती हिन्द स्वराज की चीर सजग प्रहरी है जो अभिनन्दनीय है जिसके योगदान को कभी मुगल मराठा संघर्ष में भुलाया नही जा सकता है।मराठी कवि लेखक शिवभारतकार परमानंद यांचा ने ठीक ही लिखा है-'**दिल्ली झाली दीनवाणी,दिल्लीशाचे गेले पाणी,ताराबाई रामराणी भद्रकाली कोपली !!**' सचमुच ताराबाई ने हिंदवी स्वराज की जो मशाल जलाई उसकी लौ से भारतीय आकाश भी केसरिया हो उठा था।

मराठा भारत

कैप्टन सुभाष ओझा

भारतीय इतिहास में कई पन्ने अनछुए रह गए हैं। हमारे इतिहासकारों ने भारत के स्वतंत्रता के बाद भी जो कार्य करना था वह ठीक से नहीं किया और इस कारण मध्यकालीन इतिहास पढ़ने वाले लोगों के मन में गलत धारणाएं स्थापित हो गईं। हमें यह ठीक से बताया ही नहीं गया कि मुगलों के पहले और उनके समानांतर भारत किस रूप में था। भारत की कला, संस्कृति, उस समय का साहित्य और वास्तविक इतिहास कैसा रहा। खासतौर पर लगभग 200 वर्ष का वह कालखण्ड जिसमें मुगल मराठा युद्धों की बात तो की जाती है लेकिन यह नहीं बताया जाता कि मराठा साम्राज्य का भारत, मुगल साम्राज्य से कई गुना बड़ा था। यहां तक कि 18वीं शताब्दी में जो बचा-खुचा मुगल आधिपत्य था वह केवल और केवल मराठों के कंधों पर टिका था। कई बार लालकिले पर काबिज होने के बाद भी नैतिकता और चरित्रबल के पोषक हमारे भारतीय 'हिन्दवी स्वराज्य' के नायकों ने सुरक्षित रूप से लालकिला मुगल बादशाहों को सौंपा। यह अलग बात है कि मुगलों ने आपसी मारकाट और वर्चस्व की जंग में कई बार लालकिले को रक्तरंजित किया। 17वीं शताब्दी मध्यकालीन भारत के इतिहास में कई स्वर्णकाल लिये हुए है। छत्रपति शिवाजी के उदय से लेकर मराठा साम्राज्य की स्थापना तक के हिन्दू भारत पर बहुत कम लिखा गया है। किसी एक आलेख में इस स्वर्णकाल को लपेटना संभव नहीं है। फिर भी हमारी कोशिश है कि संक्षेप में उस ऐतिहासिक युग को इतना तो रेखांकित किया ही जाए जिससे नई पीढ़ी को अपने अतीत पर गर्व करने योग्य उत्सुकता जगे एवं वह स्वाभिमान से लबरेज हो। यह केवल एक साम्राज्य की गाथा नहीं है बल्कि बहुत निकट के एक ऐसे समय का इतिहास है जब लगातार युद्धों के बीच भारतीय लोक को सुदृढ़, सशक्त और सुरक्षित शासन व्यवस्था उपलब्ध थी। वह चाहे लोगों के रहन-सहन और जीवन संस्कृति को उन्नत करने की योजना हो अथवा गांव, कस्बे, नगर, बाजार और महानगरों में भूमि व्यवस्था। इसमें एक सशक्त आत्मनिर्भर भारत की वह वास्तविक विरासत मौजूद है जिसका सपना आज का भारत देख रहा है।

लेखक उच्च न्यायालय लखनऊ में वरिष्ठ अधिवक्ता, लोकभारती के जल संरक्षण योजना के संयोजक, राष्ट्रवादी चिंतक एवं संस्कृति पर्व के सलाहकार संपादक हैं।

संपर्क- 9415217404

17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान भारत के एक बड़े हिस्से पर हावी था। मराठा साम्राज्य औपचारिक रूप से 1674 में छत्रपति शिवाजी के उदय के साथ शुरू हुआ। मराठा साम्राज्य दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विस्तार और आगमन के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था। इसने दक्कन के पठार में व्याप्त अराजकता को समाप्त कर दिया इसलिए, मराठा साम्राज्य को भारत में मुगल शासन को समाप्त करने का श्रेय दिया जाता है और इसे अक्सर एक सच्ची भारतीय शक्ति के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप पर हावी था। अपने चरम पर मराठा साम्राज्य उत्तर में पेशावर से लेकर दक्षिण में तंजावुर तक फैला हुआ था। मराठा जिन्होंने दक्कन के पठार से उभरने वाले एक योद्धा समूह के रूप में शुरुआत की, 19वीं सदी की शुरुआत में उनके पतन से पहले भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्सों को नियंत्रित करने के लिए चले गए।

कई वर्षों तक पश्चिमी दक्कन के पठार ने मराठी योद्धाओं के एक समूह के लिए घर का काम किया जो शिवाजी भोंसले नामक एक प्रमुख योद्धा के अधीन था। 1645 में शिवाजी के नेतृत्व में बीजापुर की सल्तनत के शासन विरोध में खड़े हुए और नए साम्राज्य की स्थापना की। शिवाजी ने इसे 'हिंदवी स्वराज्य' शब्द का नाम दिया, जिसमें हिंदुओं के बीच स्व-शासन का आह्वान किया गया था। मुगलों के शासकों को भारत से बाहर निकालने के लिए मराठा भी दृढ़ थे क्योंकि वे चाहते थे कि उनका देश हिंदुओं द्वारा शासित हो।

इसके अलावा मुगलों के साथ शिवाजी का टकराव जो 1657 से शुरू हुआ, मुगलों के प्रति घृणा के प्राथमिक कारणों में से एक के रूप में था। इस बीच शिवाजी ने अपने अभियानों के माध्यम से भूमि के बड़े क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उन्होंने मुगलों सहित विभिन्न अन्य शासकों के साथ मुद्दों से निपटने के लिए एक सशस्त्र बल भी इकट्ठा किया था। हालाँकि मराठों की नई भूमि पर शासन करने के लिए उनके पास आधिकारिक खिताब का अभाव था। इसलिए उपमहाद्वीप में हिंदू राज्य की स्थापना और विस्तार के उद्देश्य से शिवाजी को 6 जून 1674 को मराठा राज्य का शासक घोषित किया गया था।

मराठा साम्राज्य का विस्तार

शिवाजी के राज्याभिषेक में सभी गैर-हिंदू शासकों को एक संदेश भेजा गया था। संदेश से यह स्पष्ट था कि यह हिंदुओं के लिए अपनी मातृभूमि पर नियंत्रण करने का समय है। एक भव्य राज्याभिषेक की मेजबानी करके (जिसमे 50 हजार से भी ज्यादा जनता और शासक शामिल हुए थे) शिवाजी ने खुद को हिन्दू राष्ट्र का सम्राट घोषित किया। इस कार्यक्रम ने मुगलों को सीधा चेतावनी संकेत भेजा और शिवाजी के खुद को मुगलों का प्रतिद्वंदी साबित किया। इस कार्यक्रम में शिवाजी को छत्रपति की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस तरह शिवाजी में मराठा साम्राज्य की स्थापना की।

राज्याभिषेक के समय शिवाजी के पास शासन करने के लिए भारतीय उपमहाद्वीप का मात्र 4.1 प्रतिशत हिस्सा था इसलिए उन्होंने शुरू से ही अपने क्षेत्र का विस्तार करने पर ध्यान केंद्रित किया। राज्याभिषेक के लगभग तुरंत बाद रायगढ़ को राजधानी बनाते हुए शिवाजी ने अक्टूबर 1674 को खानदेश में छापामार पद्धति से कब्ज़ा कर लिया। अगले दो साल के भीतर उन्होंने पोंडा, करवार, कोल्हापुर, और अथानी जैसे आस-पास के प्रदेशों पर कब्जा करकर साम्राज्य को बड़ा कर लिया। 1677 में शिवाजी ने गोलकुंडा सल्तनत के शासक के साथ एक संधि में प्रवेश किया, जो मुगलों का एकजुट विरोध करने के लिए शिवाजी की शर्तों पर सहमत हुए। उसी वर्ष शिवाजी ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और दक्षिण की ओर आगे बढ़ते हुए गिंगी और वेल्लोर के किलों को अपने अधीन कर लिया।

> **"शिवाजी के निधन के बाद मराठा साम्राज्य उनके पुत्र संभाजी के अधीन रहा। मुगल सम्राट औरंगजेब से लगातार खतरे के बावजूद संभाजी के नेतृत्व वाली मराठा सेनाओं ने लगातार आठ वर्षों तक औरंगजेब के नेतृत्व वाली सेना से लड़ाई नहीं हारी। हालाँकि 1689 में संभाजी को मुगलों द्वारा बलात्कार और हत्या सहित विभिन्न आरोपों में पकड़ लिया गया और मार डाला गया।"**

शिवाजी के निधन के बाद मराठा साम्राज्य उनके पुत्र संभाजी के अधीन रहा। मुगल सम्राट औरंगजेब से लगातार खतरे के बावजूद संभाजी के नेतृत्व वाली मराठा सेनाओं ने लगातार आठ वर्षों तक औरंगजेब के नेतृत्व वाली सेना से लड़ाई नहीं हारी। हालाँकि 1689 में संभाजी को मुगलों द्वारा बलात्कार और हत्या सहित विभिन्न आरोपों में पकड़ लिया गया और मार डाला गया। मराठा साम्राज्य पर तब संभाजी के सौतेले भाई राजाराम, राजाराम की विधवा ताराबाई और फिर संभाजी के बेटे शाहू जैसे कई शासकों का शासन रहा।

मराठा साम्राज्य में पेशवा कार्यकाल

शाहू के शासन के तहत बालाजी विश्वनाथ को 1713 में मराठा साम्राज्य के प्रधानमंत्री (पेशवा) के रूप में नियुक्त किया गया था। शाहू के शासनकाल में कुशल और बहादुर योद्धा राघोजी भोसले के नेतृत्व में पूर्व में साम्राज्य के विस्तार को भी देखा गया।समय के साथ शाहू अपने प्रधानमंत्री पेशवा बालाजी विश्वनाथ के हाथों की कठपुतली बन गया, जिसने साम्राज्य की बेहतरी के लिए बड़े फैसले लिए।

बालाजी विश्वनाथ ने वर्ष 1714 में कान्होजी आंग्रे के साथ मिलकर जल में मराठा सेना की ताकत बड़ाई। कान्होजी आंग्रे मराठा साम्राज्य की नौसेना के सर्वप्रथम सिपहसालार थे। उन्हें सरख़ेल आंग्रे भी कहा जाता है। "सरख़ेल" का अर्थ भी नौसेनाध्यक्ष होता

है। उन्होंने आजीवन हिन्द महासागर में ब्रिटिश, पुर्तगाली और डच नौसैनिक गतिविधियों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। जिसने मराठों को 1719 में दिल्ली की ओर मार्च करने का विश्वास दिलाया। इस दौरान मराठा मुगल गवर्नर सैय्यद हुसैन अली को भी हराने में सफल रहे थे। पहले से ही कमजोर मुगल साम्राज्य को मराठों से डर लगने लगा।

अप्रैल 1719 में बालाजी विश्वनाथ के निधन के बाद, बाजीराव प्रथम को साम्राज्य के नए पेशवा के रूप में नियुक्त किया गया। बाजीराव मराठा साम्राज्य के एक प्रमुख पेशवा बन गए क्योंकि उन्होंने 1720 से 1740 तक मराठा साम्राज्य को आधे भारतवर्ष में फैला दिया था। बाजीराव के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने 40 से अधिक लड़ाइयों में मराठा सेना का नेतृत्व किया और सभी को जीता। इनमे से 'पालखेड़ की लड़ाई' (1728), 'दिल्ली की लड़ाई' (1737) और 'भोपाल की लड़ाई' (1737) प्रमुख थी।

अप्रैल 1740 में बाजीराव की असमय मृत्यु हो गई। उनके निधन के बाद शाहू ने बाजीराव के 19 वर्षीय पुत्र बालाजी बाजीराव को नया पेशवा नियुक्त किया। बालाजी बाजीराव के शासनकाल के दौरान मराठा साम्राज्य अपने चरम पर पहुंचने के लिए और आगे बढ़ा। साम्राज्य के प्रभावशाली विस्तार का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण राघोजी भोंसले भी थे, जिसने साम्राज्य के नागपुर जिले को नियंत्रित किया था। राघोजी ने तब बंगाल में छह अभियानों की एक श्रृंखला शुरू की, जिसके दौरान वह ओडिशा को मराठा साम्राज्य में शामिल करने में सक्षम थे। 1751 में बंगाल के तत्कालीन नवाब, अलीवर्दी खान ने वार्षिक कर के रूप में 1।2 मिलियन रुपये तक खर्च करने पर सहमति व्यक्त की। जिसने मराठा साम्राज्य के पहले से ही समृद्ध धन में वृद्धि की। मराठाओं की उत्तर भारत विजय अभियान में अफगान सैनिकों पर निर्णायक जीत अधिक प्रभावशाली दिखी। 8 मई 1758 को पेशावर पर कब्जा करने के बाद मराठा उत्तर में भी प्रमुख साम्राज्य बन गया। 1760 तक मराठा साम्राज्य 2।5 मिलियन वर्ग किमी से अधिक क्षेत्र के साथ अपने चरम पर पहुंच गया था।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी क्षेत्र में मराठा शक्ति के विस्तार ने अहमद शाह दुर्रानी के दरबार में बड़ी चिंता पैदा की। मराठों को एक युद्ध के लिए चुनौती देने से पहले और उत्तर भारत से मराठों को हटाने के प्रयास में दुर्रानी ने वध के नवाब सुजाउद्दौला और रोहिल्ला सरदार नजीब उददोला के साथ हाथ मिलाये। 14 जनवरी 1761 को अहमद शाह अब्दाली और मराठों के बीच 'पानीपत का तृतीय युद्ध' हुआ। हालाँकि युद्ध से ठीक पहले राजपूतों और जाटों द्वारा मराठाओं को छोड़ दिया गया था, जिसने युद्ध में मराठों की हार सुनिश्चित की। मराठों के पीछे हटने के पीछे उनके मकसद को स्पष्ट करते हुए, राजपूतों और जाटों ने मराठों के अहंकार और घबराहट का हवाला दिया।

मराठा साम्राज्य का पुनरुत्थान

पानीपत की लड़ाई के बाद साम्राज्य के चौथे पेशवा माधवराव प्रथम ने मराठा साम्राज्य को फिर से जीवित करना शुरू किया। साम्राज्य को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए, उन्होंने चयनित शूरवीरों को अर्ध-स्वायत्तता दी, जिन्होंने विभिन्न अर्ध-स्वायत्त मराठा राज्यों की कमान संभाली। इसलिए विभिन्न समूहों जैसे कि पेशवा, होल्कर, गायकवाड़, सिंडीदास, भोंसले और पुअर्स के नेताओं ने अलग-अलग मराठा राज्यों पर शासन करना शुरू कर दिया। पानीपत की लड़ाई के बाद राजपूतों को मल्हार राव होलकर के नेतृत्व वाली सेनाओं ने हराया, जिसने राजस्थान में मराठा शासन बहाल किया। महादजी शिंदे एक अन्य प्रमुख नेता थे जो मराठा शक्ति को बहाल करने में काफी हद तक जिम्मेदार थे। रोहिल्ला और जाटों को हराने के बाद, शिंदे की सेना ने दिल्ली और हरियाणा को हटा दिया, जिससे उत्तर में मराठों की तस्वीर वापस आ गई। इस बीच गजेन्द्रगढ़ की लड़ाई में तुकोजीराव होलकर ने एक प्रमुख दक्षिण भारतीय शासक (जिसे टीपू सुल्तान के नाम से जाना जाता था) को हराया। जिसने दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक मराठों का क्षेत्र बढ़ाया।

मराठा साम्राज्य का पतन

बंगाल के नवाब को हराने के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल में सत्ता संभाली और उनकी नजर भारत के उत्तरी क्षेत्र पर थी, जिस पर काफी हद तक मराठों का नियंत्रण था। 1803 में 'दिल्ली की लड़ाई' में, मराठों को अंग्रेजी सेनाओं ने हराया था, जिसका नेतृत्व जनरल लेक ने किया था। द्वितीय एंग्लो-मराठा युद्ध के दौरान (जो 1803 से 1805 तक हुआ) आर्थर वेलेस्ले के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने मराठों को हराया, जिसने अंग्रेजों के पक्ष में कई संधियों को जन्म दिया। अंत में तीसरे एंग्लो-मराठा युद्ध के दौरान, पेशवा बाजी राव द्वितीय को अंग्रेजों ने हरा दिया, जिसने मराठा शासन को समाप्त कर दिया।

शासन प्रबंध

एक प्रशासनिक प्रणाली जिसे 'अष्टप्रधान' के नाम से जाना जाता है, शिवाजी ने अपने शासनकाल के दौरान बनाई थी। इस प्रशासनिक प्रणाली जिसमें आठ मंत्री शामिल थे। इसने मराठा प्रशासन का आधार बनाया। आठ मंत्री इस प्रकार थे।

पेशवा (प्रधानमंत्री)

अमात्य (वित्त मंत्री)

सचिव (सचिव)

मंत्री (आंतरिक मंत्री)

सेनापति (कमांडर-इन-चीफ)

सुमंत (विदेश मंत्री)

न्यायादक्ष (मुख्य न्यायाधीश)

पंडितराव (उच्च पुजारी)

शिवाजी ने एक धर्मनिरपेक्ष प्रशासन को बनाए रखा था जो किसी भी व्यक्ति की पसंद के अनुसार किसी भी धर्म की प्रथा को मानने की अनुमति देता था। साम्राज्य के राजस्व में सुधार करने के लिए शिवाजी ने 'जागीरदारी प्रणाली' को समाप्त कर दिया और 'रायतवारी प्रणाली' की शुरुआत की। उन्होंने गैर-मराठा क्षेत्रों पर भारी कर लगाया और गैर-मराठा शासकों को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी।

जहां तक सैन्य प्रशासन का सवाल है, शिवाजी ने एक मजबूत नौसेना के निर्माण में विशेष रुचि दिखाई क्योंकि उन्होंने 1654 की शुरुआत में ही इसके महत्व को महसूस कर लिया था। जब यह मराठाओं के भूमि-आधारित सशस्त्र बलों की बात आई, तो पैदल सेना और तोपखाने के मानक यूरोपीय ताकतों के मानकों की तुलना में थे। मराठों ने तोपों, कस्तूरी, माचिस, खंजर और अन्य हथियारों में भाले जैसे हथियारों का इस्तेमाल किया। वे अपने हथियारों का इस्तेमाल करने के तरीके में भी बुद्धिमान थे। अपने क्षेत्र की पहाड़ी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, मराठों ने भारी घुड़सवार सेना पर हल्की घुड़सवार सेना को चुना जो मुगलों के खिलाफ उनकी लड़ाई के दौरान फायदेमंद साबित हुई।

प्रमुख मराठा शासक और पेशवा

शिवाजी

साम्राज्य की स्थापना के अलावा शिवाजी मराठा शक्ति को एक प्रमुख शक्ति में बदलने के लिए जिम्मेदार थे। शिवाजी महान योद्धा राजा के रूप में आज भी भारत के लोगों के एक विशाल संप्रदाय में पूजे जाते हैं।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ

बालाजी विश्वनाथ साम्राज्य के पेशवा थे, जिन्होंने 18 वीं शताब्दी के दौरान साम्राज्य पर नियंत्रण हासिल किया। पेशवा के रूप में उनके शासनकाल के दौरान मराठा साम्राज्य का उत्तर की ओर विस्तार किया गया था।

संभाजी

शिवाजी के निधन के बाद उनके सबसे बड़े पुत्र संभाजी सिंहासन पर बैठे। पिता की तरह उन्होंने क्षेत्र का विस्तार जारी रखा। हालाँकि संभाजी अपने पिता की तुलना में उतने प्रभावी शासक के रूप में सामने नहीं आ पाए।

बाजीराव

बाजीराव ने मराठा साम्राज्य का विस्तार जारी रखा। वह एक कारण थे कि मराठा साम्राज्य अपने बेटे के शासनकाल के दौरान शिखर पर पहुंच गया। उनका शानदार सैन्य अभ्यास था जिसके कारण वह दो दशक की लड़ाइयों में अपराजित रहे।

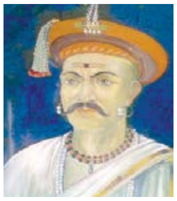

छत्रपति शाहूजी महाराज

1708ई. में शाहू ने सतारा पर अधिकार कर लिया।अब मराठा राज्य दो विरोधी उपराज्यों में विभक्त हो गया। एक राज्य सतारा के प्रमुख शाहू थे और दूसरे राज्य कोल्हापुर के प्रमुख शिवाजी द्वितीय या वस्तुतः ताराबाई थी।

बालाजी बाजीराव

जिन्हें नाना साहेब के नाम से भी जाना जाता है, बालाजी बाजीराव साम्राज्य के सबसे महत्वपूर्ण पेशवा में से एक थे क्योंकि वास्तविक राजा उनके कार्यकाल के दौरान मात्र एक व्यक्ति पद के अलावा कुछ नहीं थे।

ताराबाई भोसले

ताराबाई ने 1700 से 1708 तक साम्राज्य के शासक के रूप में कार्य किया। उन्हें अपने पति छत्रपति राजाराम भोसले के निधन के बाद मुगलों को खिलाफ खड़े होने का श्रेय दिया जाता हैं।

माधवराव प्रथम

माधव राव प्रथम साम्राज्य का चौथे पेशवा थे। जिन्हें एक महत्वपूर्ण समय (जब मराठों ने पानीपत की तीसरी लड़ाई खो दी थी) में मराठा पेशवा बनाया गया। इसलिए माधव राव प्रथम, साम्राज्य के पुनर्निर्माण के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थे। इसके पहले कि इसे अंग्रेजों इसे खत्म नहीं कर दिया

काव्य फलक

शशि पांडेय

हिन्दी काव्य एवं गद्य में समान रूप से निरंतर रचनाशील शशि पांडेय एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभर कर आयी हैं। कविता और गीत के साथ व्यंग में शशि ने बहुत काम किया है। देश में नये रचनाकारों की पांत में शशि पांडेय एक ऐसा नाम है जो अपनी रचनाशीलता के कारण लगातार स्थापना पा रहा है।

अनिता अग्रवाल

अनेक स्थापित पुरस्कारों से सम्मानित कवि एवं सशक्त गद्य लेखिका अनिता अग्रवाल किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। संस्कृति और समाज को लेकर निरंतर रचनारत अनिता अग्रवाल को उनकी विशिष्ट लेखन क्षमता के लिए कई बार सम्मानित किया जा चुका है। अनिता अग्रवाल की अबतक लगभग दर्जन भर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सम्प्रति वह संस्कृति पर्व की सम्पादकीय परिषद में वरिष्ठ सदस्य (सहायक सम्पादक, हिन्दी) के रूप में अपना योगदान दे रही हैं।

लौट कर आए हो राम

लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा
हैं ये सारे तेरे काम, मन
ये कल्पित हो रहा

विधि के विधाता तूने, जाने
क्या रच डाला था
भटके थे दर दर यहां पे,
बेबसी का ताला था
झूठ की दीवार गिरा कर,
सच सुसज्जित हो रहा...
हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा .....

लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा
हैं ये तेरे सारे काम, मन
ये कल्पित हो रहा

बेटे का फर्ज सिखाकर,
भटके थे चौदह बरस
ढूंढने को है बहुत कुछ,
है छिपा इसमें रहस
आदर्शों की बात सारी,
इसमें वर्णित हो रहा
हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा

लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा
हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा

मोह भी ना फांस पाया,
है तुम्हारी ऐसी काया
केवट और अहिल्या के,
मनों को तुमने दी छाया
शबरी के मीठे फलों में,
प्रेम समर्पित हो रहा
लौट कर आये हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा
हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा
लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा

त्याग -परित्याग का,
तुमसे सबक है मिलता
धर्म से चल कर कैसे,
अधर्म को तुमने है जीता
मन का सेतु आज, देखो
कैसे गर्वित हो रहा
लौट कर आये हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा

हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा
लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा

जगमग हैं दीप जलते,
लौ में हो तुम दिखते
आंखों में भर के तुमको,
तुमको हैं सिर्फ़ तकते
सरयू का कण कण, आज
प्रफुल्लित हो रहा
लौट कर आए हो राम ,
मन ये हर्षित हो रहा

हैं ये तेरे काम सारे, मन
ये कल्पित हो रहा
लौट कर आए हो राम,
मन ये हर्षित हो रहा।

ढांचा

एक ढांचा निरर्थक
सामने पसरा हुआ
मैं देखती हूँ
उसे लगातार
क्रूर होते हुए
समर्थ जनों के हित में
असमर्थ
साधारण के
विरुद्ध

डर

एक अकेला
और डरा हुआ मस्तिष्क
मेरा पीछा करता है
मैं सिरहाने रख कर सोती हूं
चार उजले फूल
और वह सुबह तक
काले पड़ चुके होते हैं

किस चीज से डरती हूँ मैं

हाथ की लकीरों से
हादसों से
थकी हुई इच्छा से
भीगी हुई यादों से

दो डबडबा की आँखें
मेरा पीछा करती हैं
मैं उन्हें खुश रख करने के लिए
सोचती हूँ एक गान
और गाते गाते रो देती हूँ।

प्रतिरोध

रहने दो थोड़ा सा पानी
धरा पर
कभी चातक को जरूरत
पड़ जाए तो

रहने दो नदियों को
मत बांधो
कभी सागर को जरूरत
पड़ जाए तो

रहने दो
थोड़ी सी स्याही बची
कभी कलम की ताकत
रुक जाए तो

बहने दो आँखों को
मत पोछो
कभी पत्थर का दिल
पिघल जाए तो
जीने दो
कौओं को संसार में
कभी कोयल की कूक
थम जाए तो
ईश्वर!
तुमने मेरे हिस्से में क्यों दिया
जिससे मैं पल पल डरती हूँ
दिया जलाते-जलाते
राख का घर भारती हूँ।

कविता

बड़े बड़े भारी भरकम शब्द
रख कर देख लिया उसने
नहीं बनती
कविता
कविता बनती है जब
उन्हें उन्हीं शब्दों से
होने लगती है
अनबन।

वैसे तो डॉ। संध्या राठौर सूरत में अभियांत्रिकी की प्रोफेसर हैं लेकिन अपनी कहानियों और कविताओं के लिए वह लगातार प्रसिद्धि पा रही हैं। डॉ। संध्या की लेखन शैली और उनके द्वारा चुने जाने वाले विषय इतने संवेदनशील होते हैं कि बरबस ही उनकी रचनाएं पाठकों के अंतर्मन में सीधी पैठ बनाती हैं। उनकी कहानियां जितनी सशक्त होती हैं उतनी ही संवदेनशील कविताएं भी। डॉ। संध्या राठौर की यह रचनाशीलता उन्हें देश के अग्रणी रचनाकारों की पांत में खड़ी करती है।

संध्या राठौर

लड़कियाँ

लड़कियाँ
अनाज के आटे
सी होती है ..
गाँव की लड़की
बाजरा मक्का या जवार
होती है
शहरी लड़कियाँ
मैदे या गेहूँ सा
गुबार होती है ...

बेली ही जाती है सब
रोटी पराँठा
लिट्टी कुल्चे सी
और
खाई जाती है
बस भूख (!)
मिटाने के लिए ..

चांद

सुना है तुम भी
लेफ्टिस्ट हो गए हो
पूनम के चांद थे तुम
बस अब
ईद के ही हो गए हो !!

तुम तो थे कवियों की
रचना का सुंदर मुखड़ा
सुना है मुफलिसी में
रोटी भी हो गए हो
पूनम के चांद थे तुम
बस अब
ईद के ही हो गए हो

नीले से नभ पे तुम तो
तारों में जी रहे थे
हरे हो के अब तुम
दुश्मनी क्यूं बो रहे हो
पूनम के चांद थे तुम
क्यूं ईद के ही हो रहे हो

ए चांद तुम भी
लेफ्टिस्ट से हो रहे हो !

सजते थे चन्द्र तुम
महाकाल की जटा में
जिहाद की खलिश में
क्यों खुद को खो रहे हो
ए चांद तुम तो
अब लेफ्टिस्ट से हो रहे हो !!

मैं भ्रूण हत्यारण हूँ

नहीं ...।
उनके कोई हाथ नहीं,
पैर भी नहीं है !
माथा भी नहीं है !
न आँखे ...न नाक...
मुँह.. सर... बाल
पीठ.. पेट...
कुछ भी नहीं है उनके!!!
निराकार है मेरे शब्द ..
शब्दों के वो भ्रूण,
जो मेरे मस्तिष्क में पल रहे है ...
उनका कोई प्रारूप नहीं है ...
कोई स्वरूप नहीं है!!

मेरे ही भीतर...
प्रस्फुटित हुए थे,
अंकुरित हुए थे,
जब प्रेम किया था मैंने !
तुमसे, हाँ !!
जब तुमसे प्रेम किया था मैंने!!

वो शब्द ...
पल पल मेरे भीतर,
छटपटाते और
अगले ही पल
जन्म ले...
भाषा के रूप में,
मुझ से तुम तक,
और तुम्हारे ह्रदय,
मस्तिष्क में समा जाते !

मेरा मौन भी तो
पलता रहा है तुममें !!
जब कोई आहट नहीं ...
आवाज़ नहीं होती थी
होते थे ..
सिर्फ़ तुम और मैं
और मौन !!

मेरे शब्द,
मेरी भाषा,
आँखो की भाषा ,
होंठो की भाषा,
उँगलियों की भाषा,
नेह की भाषा,
और देह की भाषा,
मुझसे प्रेषित हो,
तुममें समाहित हो गए थे !
याद है तुम्हें ??

और अब,
जब की वो तंतु ...
नेह का तंतु,
प्रेम का सेतु टूट गया,
बिखर गए ...
वो सब मेरे शब्द,
जो ढले थे और
पलें थे तुममें...
वो मौन के शब्द,
वो स्पर्श के शब्द...।
सभी के सभी शब्द,
विलीन हो गए
शून्य में .....
किसी अंधेरी गर्त में !!

मगर ...।
मेरे मस्तिष्क के गर्भ में
अब भी,
जनम लेते है शब्द ...।
प्रेम के शब्द ...
अथाह पीड़ा के शब्द ...।
मगर,
गर्भपात होता है !
मैं ...
मैं करती हूँ गर्भपात !!
शब्दों को,
जनम नहीं लेने देती !!!
मार देती हूँ !!!
गला घोंट देती हूँ उनका !!
वो छटपटाते है ...
दम तोड़ देते है ...
और बह जाते है ...
आँखो के पोरों से,
शनै शनै ...
और पुनः,
गर्भ धारण होता है !
मगर मैं,
फिर उन्हें मार देती हूँ !!
गर्भपात करा देती हूँ ,
मस्तिष्क में जने
शब्दों का, विचारों का !!

हाँ ... हाँ ... हाँ ...
मैं भ्रूण हत्यारण हूँ !!

शमशान घाट नहीं देखे

मैंने कभी
शमशान घाट नहीं देखे ..
नहीं देखा
वो मटके को फोड़ना
और परिक्रमा करना
चिता की
कभी नहीं देखा
लाशों को
भड़भड जलते हुए
हड्डियों को
खोपड़ी को चटकते हुए ...
कभी देखा नहीं उन्हें
देर तक जलते हुए ...

मगर ...
मैंने देखी है
जिंदा आँखे
जिंदा ख़्वाहिशें...
जिंदा सपने
जो शनै शनै जलते है
ताउम्र ...

उनसे धुँआ नहीं ...
पानी बहता है ..
और ...
ये पानी ...
उस आग को
ताउम्र जलाए रखता है !!

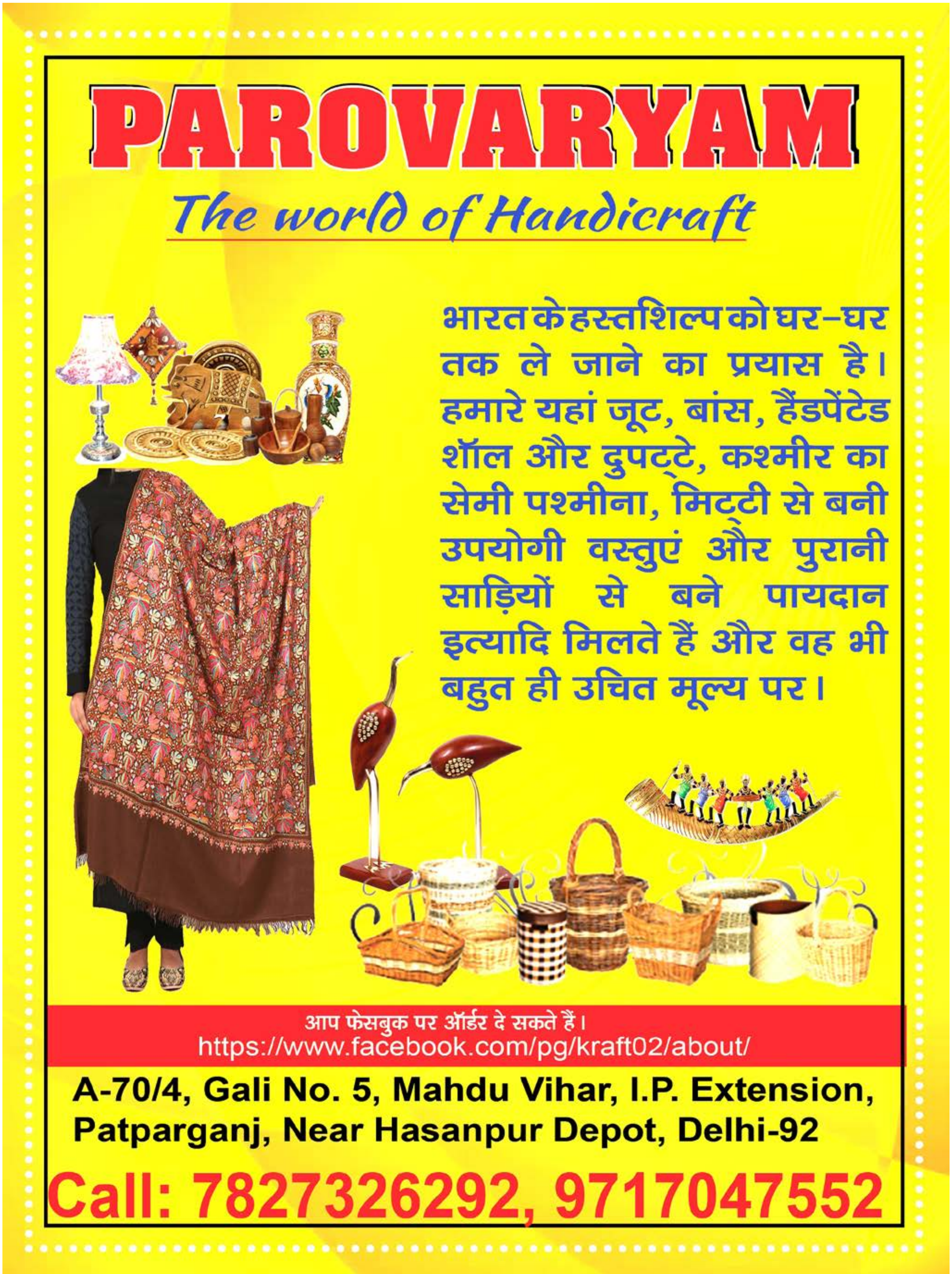
PAROVARYAM
The world of Handicraft
भारत के हस्तशिल्प को घर-घर तक ले जाने का प्रयास है। हमारे यहां जूट, बांस, हैंडपेंटेड शॉल और दुपट्टे, कश्मीर का सेमी पश्मीना, मिट्टी से बनी उपयोगी वस्तुएं और पुरानी साड़ियों से बने पायदान इत्यादि मिलते हैं और वह भी बहुत ही उचित मूल्य पर।
आप फेसबुक पर ऑर्डर दे सकते हैं।
https://www.facebook.com/pg/kraft02/about/
A-70/4, Gali No. 5, Mahdu Vihar, I.P. Extension,
Patparganj, Near Hasanpur Depot, Delhi-92
Call: 7827326292, 9717047552

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva
(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME ____________________

पिता/पति
FATHER/HUSBAND ____________________

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE ____________________

____

____

पिन कोड
PIN CODE ____________________

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE ____________________

ई-मेल
MAIL ID ____________________

मोबाइल नं०
MOBILE NO. ____________________

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

अपूर्वा मानव सेवा संस्थान

महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार स्वावलम्बन, दिव्यांग कल्याण, पर्यावरण और स्वच्छता के लिए निरंतर प्रयत्नशील

Head Office Address
4/19, Vivek Khand, Manoj Pandey Chowk, Gomti Nagar, Lucknow, U.P. - 226010
Phone : 5224060585, +91 9005153664
Branch Office Address
210, 2nd Floor, Netaji Subhash Apartment, Phase-1 Pocket-1, Sector 13, New Delhi - 110078
Email : apporvamss25@gmail.com
Website : www.apoorvamss.com

मनोज कुमार सिंह
(अध्यक्ष)

भारत संस्कृति न्यास

उद्देश्य

सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील

राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत

प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास

राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार
बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001
1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010
✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय
बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024
Contact : 011-24337573
bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org